जैन भारती

वर्ष 54 • अंक 4 • अप्रैल, 2006

With best compliments from :

Fashion Paris™
Trousers & Shirts

Fashion Adventure™
Jeans & Casuals

Kiran Chand Kundlia
Prakash Kundlia
Mob : 98441 02993

FASHION ADVENTURE

4/7, 2nd floor, 1st Cross
Annipura, Near K.H. Double Road
Sudhamanagar, Bangalore 560027

Tel : 91-80-22273327, Mob : 9341965313
Telefax : 91-80-22485022
e-mail : fashion adventure@vsnl.net108

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 54 • अप्रैल, 2006 • अंक 4

विमर्श

9
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
अनेकांत : सम्यक् तत्त्व और आचार का आलोक

13
वीरेन्द्र कुमार जैन
आधुनिकता-बोध और महावीर

19
साध्वी विद्यावती 'द्वितीय'
अनेकांत : विमति के बीच सहमति

•

आवरण
अडिग

अनुभूति

25
साध्वी मुदितयशा
सच्चं लोयम्मि सारभूयं

29
दलाई लामा
अध्यात्म : एक निरपेक्ष नीति

31
चतरसिंह मेहता
छोड़ सकल अभिमान

36
कहानी
हरमन हेस
नदी-तट पर

40
कविता
तुलसीरमण की कविताएं

प्रसंग

5
शुभू पटवा
आरोग्य और जीवन

शीलन

43
साध्वी श्रुतयशा
आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु

48
बालकथा
सावित्री
अमूल्य मणि

रपट

52
भवानी सोलंकी
142वां मर्यादा महोत्सव

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

फिर मार्ग क्या पहिचाना?

अल्प कर्म वाले जीव झूठे गुरु को छोड़ सच्चे गुरु को स्वीकार करते हैं, तब अन्य संप्रदाय के साधु और उनके श्रावक कहते हैं—'पाली में विजयचंद पटवा लोगों को रुपए देकर श्रावक बनाता है।'

तब स्वामीजी बोले—'तुम्हारे श्रावक रुपयों के बल पर अपना धर्म बदल लेते हैं, तब उन्होंने तुम्हारा मार्ग क्या पहिचाना? तुम कहते हो कि वे रुपयों के बल पर दूसरे धर्म में चले जाते हैं तो शेष लोग भी रुपयों के बल पर दूसरे धर्म में चले जाएंगे। इससे लगता है, तुम्हारे श्रावकों ने तुम्हारे मार्ग को नहीं पहिचाना।'

वर्तमान काल में मौन

'कोई सावद्य दान देता है, लेता है, उस समय उस विषय में साधु को उसके लाभालाभ के बारे में पूछने पर उसे वर्तमान काल में मौन रहना चाहिए।'—इस पर स्वामीजी ने दृष्टांत दिया—'कुश के दोनों छोर आग से गरम हो उठते हैं और वह बीच में ठंडा रहता है। इधर से पकड़ने पर हाथ जलते हैं और दूसरे छोर पर पकड़ने पर भी हाथ जलते हैं, पर उसे बीच में से पकड़ने पर हाथ नहीं जलते हैं।

'इसी प्रकार वर्तमान काल में सावद्य दान के विषय में पुण्य कहने से छह काय के जीवों की हिंसा लगती है और पाप कहने से दान देने वालों के अंतराय होता है, इसलिए वर्तमान काल में मौन रखना चाहिए।'

हरियाली खाने के लिए बनाई है

कोई कहता है—भगवान ने हरियाली खाने के लिए बनाई है।

तब स्वामीजी बोले—'तुम्हारे कथनानुसार तुम बाघ के आने पर क्यों भाग जाते हो? तुझे भी तो भगवान ने भक्ष्य बनाया है? तुम्हारे मतानुसार तुझे बाघ के खाने के लिए बनाया है।'

तब वह बोला—'मेरा जीव छटपटाता है और दुख पाता है।'

'सब जीवों के बारे में तू ऐसे ही सोच। वे भी मारे जाने पर दुख का अनुभव करते हैं।' •

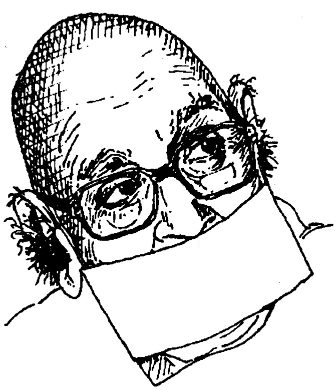

संसार के सामने दो स्थितियां हैं—भोग और त्याग। भोग का अतिवाद समाज को पतन की ओर ले जाता है। त्याग का अतिवाद सबके लिए संभव नहीं बनता। अणुव्रत एक ऐसा मार्ग है, जो भोग को सीमित करता है तथा त्याग को संभवता की सीमा में प्रोत्साहन देता है। इसके लिए शिक्षा में परिवर्तन की निहायत जरूरत है। वर्तमान में शिक्षा के द्वारा केवल बौद्धिक विकास हो रहा है। बौद्धिक विकास बहुत आवश्यक है, किंतु समस्याओं के समाधान के लिए केवल वही पर्याप्त नहीं है। समस्या सुलझती है—ज्ञान-चेतना और अंतर्दृष्टि का संतुलित विकास होने से। बौद्धिकता बढ़े और उसके साथ-साथ अंतश्चेतना न जागे तो बौद्धिकता स्वयं समस्या बन सकती है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्दृष्टि को जगाने वाली विधा की शाखा को जोड़ दिया जाए तो वह भावी पीढ़ी के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवदान हो सकता है। अंतर्दृष्टि को जगाने वाली विधा को मैं जीवन-विज्ञान कहता हूं।

—आचार्यश्री तुलसी

धर्म एक सार्वभौम, सार्वजनिक और सार्वजनीन तत्त्व है। जो सबके लिए हो, वह सार्वजनिक होता है, जो सबके लिए हितप्रद हो, वह सार्वजनीन होता है। राजा और शास्ता—दोनों का भी अपना धर्म होता है। राजनीति में कार्य करने वाला अपने-आप को जनता का सेवक मानकर कार्य करें, यह जरूरी है। राजनीति में यदि निष्पक्षता और ईमानदारी है, तो राजनीति में भी धर्म की स्थापना हो सकती है और ऐसी राजनीति ही जनता के लिए कल्याणकारी हो सकती है।

× × ×

आदमी के मन में एक भावना रहती है कि मैं सदा निर्भय रहूं। भय बहुत बड़ा दुख होता है और निर्भयता में बड़ी शांति का और आनंद का अनुभव होता है। यह निर्भयता कैसे प्राप्त हो सकती है? इसके अनेक उपाय संभव हैं। उन उपायों में एक सशक्त उपाय है—भाव-शुद्धि। आदमी का भाव शुद्ध हो तो निर्भयता रह सकती है। भाव-शुद्धि का साधन है—मैत्री की भावना का प्रयोग।

× × ×

मनुष्य अनेक चित वाला है—'अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे।' वह सदा एकरूप नहीं रहता। उसके भाव/विचार बदलते रहते हैं। जो जागरूक और विवेकसंपन्न होता है, वह ज्यादा-से-ज्यादा विधायक भावों में रहने का प्रयास करता है।

—युवाचार्यश्री महाश्रमण

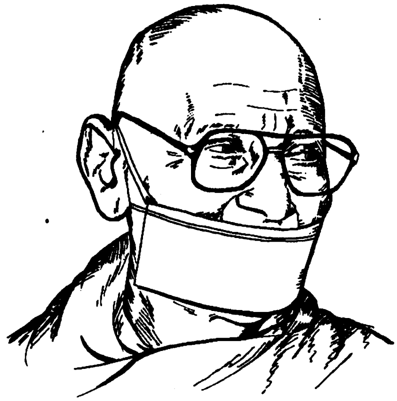

अहिंसा का यह अर्थ नहीं कि हम अपने अस्तित्व को समाप्त कर दें। अपना अस्तित्व स्वतंत्र रहे, एक साथ रहे। स्वतंत्रता और सह-अस्तित्व—दोनों का इतना सुंदर प्रतिपादन हुआ है कि तुम स्वतंत्र भी हो और सह-अस्तित्व वाले भी हो। अकेला कोई रह ही नहीं सकता। अगर कोई आदमी यह चाहे कि मैं अकेला रहूं—कभी संभव नहीं है। इस दुनिया में अकेला कोई रह नहीं सकता। आकाश को छोड़ा नहीं जा सकता। गतितत्त्व और स्थितितत्त्व को छोड़ा नहीं जा सकता। परमाणुओं, काल और देश का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। फिर आदमी अकेला रहेगा कहां? यह अकेलेपन की कल्पना स्थूल कल्पना है, सापेक्ष कल्पना है। अकेला कोई भी हो नहीं सकता। हर आदमी एक-दूसरे से जुड़ा है, संबंध किए हुए है।

यह जैन दर्शन का जगत—जिसमें सह-अस्तित्व है, जिसमें भाईचारा है, जिसमें स्वतंत्रता है—इसमें हम हैं। हम केवल पुद्गल के साथ ही नहीं हैं, जीवों के साथ भी हैं। जिस जगत में हम हैं, उसमें हमारे और भी बहुत-से भाई हैं। एक पृथ्वी का जीव, मिट्टी में पैदा होने वाला जीव, एक पानी में पैदा होने वाला जीव, एक अग्नि में पैदा होने वाला जीव, एक वायु में पैदा होने वाला जीव, एक वनस्पति में पैदा होने वाला जीव और एक त्रस में पैदा होने वाला जीव। एक आदमी इन सारे जीवों के साथ जी रहा है। हम अकेले नहीं हैं। कितना बड़ा है हमारा परिवार। मूल जगत तो हमारा बहुत छोटा है। द्रव्य बहुत छोटा है, किंतु उसका परिवार बहुत लंबा है। विस्तार को हम देखें तो पता ही नहीं चल सकता। बड़ा विचित्र-सा लगता है। जगत का मूल भाग बहुत छोटा और उत्तर भाग बहुत बड़ा होता है। ग्रंथ छोटा और परिशिष्ट तथा भूमिका बड़े। ऐसा होता है। वही बात हो गई, सूत्र का यही तो मतलब है, सूत्र बहुत छोटा और अर्थ बहुत बड़ा।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

आरोग्य और जीवन

आरोग्य की बात मात्र शारीरिक रुग्णता के उपचार तक देखी जाती रही है और यह सर्वविदित है कि रोगोपचार की अनेक प्रचलित विधियों के चलते तथा एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के निरंतर विकास के बावजूद बढ़ रहे रोगों पर नियंत्रण नहीं लग पाया है। नए-नए रोगों के नामों के साथ वे रोग, जो पीढ़ियों से अपना 'फण' फैलाए हुए हैं, किसी भी चिकित्सा-विधि ने इन पर अंकुश लगा दिया हो—नहीं कहा जा सकता है। तपेदिक जैसी बीमारी, जो सदियों से चली आ रही है और कभी कुलीन घरों तक सीमित थी, आज हर वर्ग इसकी चपेट में है। कुलीनों की इस बीमारी को राजयक्ष्मा कहा जाता था और तब यह असाध्य रोग था। लगातार के अनुसंधानों के चलते आज यह बीमारी असाध्य नहीं रही और न कुलीनों की 'राजयक्ष्मा' ही इसका नाम बचा है। लोक-प्रचलन में अब यह 'टी.बी.' है और भारत जैसे देश में हर रोज एक हजार लोगों को यह बीमारी काल के मुंह में धकेल देती है। बताते हैं कि पूरी दुनिया में हर साल तीस लाख लोग मौत के मुंह में चले जाते हैं और 70-80 लाख लोग इसकी चपेट में आ जाते हैं। भारत में इस समय एक करोड़ चालीस लाख लोग तपेदिक से पीड़ित हैं, जबकि हर साल अठारह लाख नए मामले सामने आते हैं। यह भी बताते हैं कि दिल्ली जैसा प्रगतिशील, आधुनिक शहर भी हर साल 32 हजार नए रोगी जोड़ता है। कोई साठ हजार बीमार तपेदिक के हैं—जो भारत की राजधानी दिल्ली में बसर करते हैं।

रोगों की लंबी फेहरिस्त है और रोगियों की संख्या भी लगातार बढ़ती रहती है। एच.आई.वी. एड्स, कैंसर, मलेरिया, हृदय रोग, मधुमेह, रक्तचाप जैसी बीमारियों के उपचार, इनके उपचार के लिए अनुसंधान और जांच-पड़ताल के महंगे उपकरणों व विधियों ने किसी भी रोग पर नियंत्रण पाया हो—नहीं मान सकते। अलबत्ता उपचार में सुगमता अवश्य आई है, पर यह भी मानना होगा कि इनका इलाज, दवाएं, जांच-पड़ताल आदि इतने महंगे हैं कि सामान्य निर्धन आदमी की क्षमता से बाहर हैं। इन रोगों के उपचार और अनुसंधान पर भी बेशुमार धन खर्च हो रहा है। तपेदिक का इलाज निशुल्क करने से लेकर, 'डॉट्स' कार्यक्रम के तहत घर के दरवाजे पर चिकित्सा दलों की दस्तक और अपने हाथ से रोगी को दवा खिलाने तक के अभियान चलाए जा रहे हैं, पर बीमारों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

इस पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट हो रहा है कि रोगोपचार में चिकित्सा-विधियां सफल नहीं हो पा रही हैं। समूचे महंगे अनुसंधान और जांच-परख के तरीके इनकी रोकथाम में

सहायक नहीं हो रहे हैं। तब यह सोचना समय का तकाजा होना चाहिए कि रोगों की बढ़ोतरी पर नियंत्रण के वैकल्पिक उपाय क्या हो सकते हैं!

वैकल्पिक उपायों की बात आते ही आरोग्य के अनेक फलक हमारे सामने खुल जाते हैं। जीवन-चर्या और ऋतु-चर्या के मध्य वांछित तालमेल सर्वतोमुखी विचारणीय है। ऋतु के अनुसार आचरण-विधि हमारे देश में एक समय में काफी प्रचलित रही है। मौटे तौर पर छः ऋतुएं—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर रही हैं, जो बारह मास की अवधि में दो-दो माह तक—वसंत-ऋतु 16 मार्च से 15 मई (चैत्र-वैशाख) तक, ग्रीष्म-ऋतु 16 मई से 15 जुलाई (ज्येष्ठ-आषाढ़) तक, वर्षा-ऋतु 16 जुलाई से 16 सितंबर (श्रावण-भाद्रपद) तक, शरद-ऋतु 17 सितंबर से 15 नवंबर (आसोज-कार्तिक) तक, हेमंत-ऋतु 16 नवंबर से 15 जनवरी (मार्गशीर्ष-पौष) तक और शिशिर-ऋतु 16 जनवरी से 15 मार्च (माघ-फाल्गुन) तक मानी जाती है। इस काल-क्रम के अनुसार ही हमारी जीवन-चर्या संचालित होती रहे—यही ऋतु-चर्या है। आहार, निद्रा, मैथुन, व्यायाम और स्नान आदि हमारी जीवन-चर्या के मुख्य आधार हैं जिन पर ऋतु के अनुरूप पथ्यापथ्य के स्पष्ट संकेत ऋतु-चर्या के आधार हैं। यह निर्विवाद है कि इस पथ्यापथ्य के आधार पर यदि हमारी जीवन-चर्या संचालित-संयोजित हो जाए तो शारीरिक विकार आसानी से नियंत्रित हो सकते हैं। यही नहीं, सामान्य रूप से हरएक के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी इससे हो सकता है, जो रोगों के बाहरी हमलों से लड़ने के लिए शरीर में आवश्यक रूप से होना चाहिए। हरएक चिकित्सा-विधि में यह बात सर्व-स्वीकार्य है, जबकि रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास किसी भी शरीर में मात्र प्राकृतिक अवदान ही होता है, जो ऋतु-चर्या से ही सहज संभव है।

ठीक इसी तरह मानसिक स्वस्थता के लिए आदमी का मन स्वस्थ और सुदृढ़ होना जरूरी है। मनीषी-विचारक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की मान्यता है कि पवित्र मन स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। मन की पवित्रता और दृढ़ता के लिए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी पवित्र संकल्प, पवित्र चिंतन और पवित्र स्मृति को आवश्यक मानते हैं और इसे ही वे स्वास्थ्य-शास्त्र की संज्ञा देते हैं। अपने मंतव्य को स्पष्ट करते हुए वे बताते हैं कि 'अध्यात्म-शास्त्र' का ही दूसरा नाम 'स्वास्थ्य-शास्त्र' है। आत्मिक स्वास्थ्य या कि मानसिक स्वास्थ्य में बाधा डालने वाले तत्त्वों का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, शोक, घृणा और काम-वासना जैसे विकारों को सामने रखते हुए अपनी यह मान्यता स्थापित करते हैं कि ये सभी तत्त्व शरीर और मन—दोनों को रुग्ण बनाते हैं। इनकी चिकित्सा ही स्वास्थ्य का मूल आधार है।

बहुत-से अनुसंधानों से यह स्पष्ट भी होने लगा है कि हृदयरोग, रक्तचाप, मधुमेह आदि के बुनियादी कारण शारीरिक कम तथा मानसिक अधिक हैं। यह विचार भी वर्षों से बहस का सबब रहा है कि ये रोग 'बायोलॉजिकल नहीं, बायोकल्चरल' हैं। हमारी किसी भी चिकित्सा-विधि ने इन पर अपेक्षित अनुसंधान की जरूरत नहीं समझी है। जिस एलोपैथी चिकित्सा पद्धति का संपूर्ण दुनिया पर वर्चस्व है—बल्कि कहना चाहिए आतंक की हद तक है—वहां भी ऐसा कोई विधिवत अनुसंधान नहीं हुआ है। ऐसी निराशाजनक स्थिति के चलते भी न्यूयार्क (अमेरिका) के एक प्रकाशन संस्थान 'रेंडम हाउस' ने डॉ. डीन ओरनिश की एक शोध पुस्तक 'प्रोग्राम फॉर रिवर्सिंग हार्ट डिजीज' काफी पहले प्रकाशित की है, जो यह दावा करती है कि हृदय रोग का उपचार बिना किसी शल्यक्रिया और औषधि खाए किया जा सकता है। दिल्ली स्थित अध्यात्म साधना-केंद्र तथा अ.भा. आयुर्विज्ञान संस्थान ने भी मिलकर एक अध्ययन कुछ वर्ष पहले किया है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की बहुचर्चित पुस्तक 'महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र' भी हमें देखनी चाहिए जो आरोग्य के प्रश्न पर प्रयोगों के आधार पर एक वैकल्पिक विधि प्रस्तुत करती है।

कहा जा सकता है कि गहरी निराशाजनक स्थिति में भी एक किरण अभी भी नजर आ रही है जो अंधकूप से निकाल हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है। बात सिर्फ इतनी-सी है कि यह किरण हमारी संपूर्ण दशा और दिशा को आलोकित कर सके—ऐसी परिस्थितियां हम अब बिना समय खोए कैसे पैदा करें—यह विचार गंभीरता से किया जाना चाहिए। सात अप्रैल को जिस विश्व स्वास्थ्य दिवस पर दुनिया-भर में अब तक जो-कुछ होता रहा है, यह बात इस बार जुड़े कि हम अपनी वैकल्पिक चिकित्सा-विधियों को कैसे सुदृढ़ करें, जो शारीरिक रुग्णता को दूर करने के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य की दिशा को भी प्रशस्त कर सके।

—शुभू पटवा

विमर्श

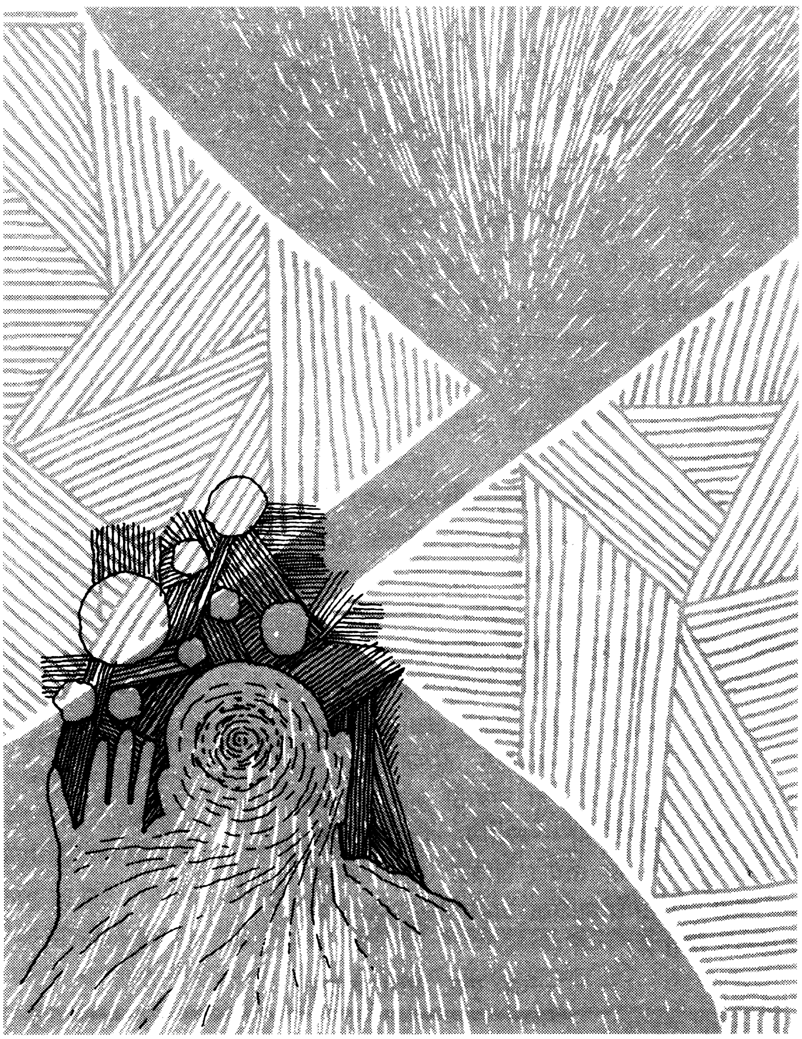

ज्ञान का, जो आत्मा का सारतत्त्व है, तिरोभाव एवं अभिव्यक्ति प्रकृति के दबाव की मात्रा के अनुसार होती है। हरेक पदार्थ विश्वात्मा में अंतर्निहित है और केवल उन कारणों के दूर होने की अपेक्षा करता है जो ज्ञान की अभिव्यक्ति में बाधक सिद्ध होते हैं। जब बाधक दूर हो जाते हैं तब आत्मा पूर्ण धारणात्मक ज्ञान-स्वरूप हो जाती है, जो देश और काल की सीमाओं से परे है। उस समय आत्मा की उस पूर्ण आभा में, जिसका सारतत्त्व चेतना है, न तो कोई मानसिक आवेग विघ्नकारक हो सकता है और न ही किसी प्रकार के स्वार्थ उसे धुंधला बना सकते हैं, और न हम यही कह सकते हैं कि इन पूर्व अवस्थाओं में कोई भेदक लक्षण रहते हैं। ज्ञान का विषय संपूर्ण यथार्थ सत्ता है और ज्ञाता विषई विशुद्ध प्रज्ञान बन गया, जिसमें भेदकारक किसी मर्यादा की संभावना नहीं है। इंद्रियगम्य आनुभाविक जगत के अवास्तविक भेद भी अब उसमें विद्यमान नहीं रहते। संक्षेप में, भेद एक ऐसे तत्त्व के कारण हैं जो सदा नहीं रहता; और जो सदा स्थाई है वह आत्मा है जिसका स्वरूप चेतना है।

—डॉ. एस. राधाकृष्णन

महावीर का संदेश है—मध्यस्थ बनो; राग और द्वेष के दोनों तटों के बीच में रहो। न किसी के प्रति रक्त और न किसी के प्रति द्विष्ट। जिसमें राग और द्वेष हैं, उसमें समभाव नहीं हो सकता। जिसमें समभाव नहीं होता, उसमें न अहिंसा होती है, न सत्य और न अपरिग्रह। उससे सामाजिक न्याय की आशा नहीं की जा सकती। आशाएं समभाव वाले व्यक्ति से ही की जा सकती हैं और समभाव की आशा मध्यस्थ व्यक्ति से की जा सकती है। अनेकांत उनके लिए है जो मध्यस्थ हैं। अनेकांत का दर्शन केवल तत्त्ववाद का दर्शन नहीं है। वह तत्त्ववाद और आचारशास्त्र—दोनों का समन्वित दर्शन है। उसका स्पर्श प्राप्त किए बिना तत्त्व और आचार—दोनों सम्यक् नहीं हो सकते। वही तत्त्व सम्यक् है जो अनेकांत के आलोक में दृष्ट है। वही आचार सम्यक् है जो अनेकांत के आलोक में आचरित है।

❑ अनेकांत : सम्यक् तत्त्व और आचार का आलोक ❑

❑ आचार्यश्री महाप्रज्ञ ❑

महावीर जयंती (चैत्र शुक्ला त्रयोदशी) विशेष

मैं महावीर की स्मृति करूं—कोई नई बात नहीं है। हर साल उनकी स्मृति करता हूं। पर, तीन-सौ उनसठ दिन तो स्मृति न करूं और केवल महावीर जयंती के रोज ही स्मृति करूं—इसका कोई अर्थ नहीं होगा। मैं महावीर को प्रणाम करूं, क्या यह कोई नई बात है? हर वक्त अपने पूज्य को, अपने इष्ट को प्रणाम करता हूं, तो उनकी जयंती के रोज स्मृति करने का यह दिखावा क्यों करूं?

महावीर—जो देशातीत, कालातीत हैं, उन्हें हमने कालबद्ध कर दिया।

महावीर मेरे लिए सदैव प्रणम्य हैं। उन्हें प्रणाम प्रतिपल होता है और स्तुति भी, उनकी स्मृति प्रतिपल रहती है। महावीर एक दर्पण हैं, जिसमें हम अपना चेहरा देख सकें, प्रतिबिंब देख सकें और अपने-आप को समझ सकें। इसी में कुछ सार्थकता है।

मुझे कहना चाहिए या नहीं, पर हम लोग पूजा करना बहुत जानते हैं। जिसकी प्रशंसा करते हैं, जिसकी स्तुति करते हैं—उसकी बात को मानना बहुत कम जानते हैं, या जानते ही नहीं। यदि महावीर की पूजा के स्थान पर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते, उनकी बात को मानकर चलते, उनके पदचिह्नों पर चलते तो जो संघर्ष हो रहा है, क्या कभी होता? धर्म के क्षेत्र में संघर्ष तो महावीर की दृष्टि से बिलकुल ही प्रतिकूल है।

मैं जानता हूं—महावीर मुक्त हैं, उनमें राग-द्वेष नहीं है। अगर महावीर आज विद्यमान होते, तो कभी पसंद नहीं करते कि उनको लेकर इतना झगड़ा हो। आज उपाश्रयों, धर्मस्थानों को लेकर विवाद हैं, छोटी-छोटी मान्यताओं को लेकर भी विवाद हैं। इन विवादों में महावीर को खोजने का प्रयत्न क्या कभी सार्थक हो सकेगा?

महावीर जयंती कैसे मनाएं

कैसे महावीर जयंती मनाएं? एक बहुत गंभीर प्रश्न है—हमारे सामने। सामाजिक क्षेत्र में कोई विवाद हो सकता है। आर्थिक क्षेत्र में अर्थ को लेकर भाई-भाई में झगड़ा हो सकता है, यद्यपि होना नहीं चाहिए, पर हो जाता है। पर, धर्म का क्षेत्र, जो विवादों से परे, झगड़े से परे, संघर्ष से परे होना चाहिए, वहां पर यह सब न हो। अनेकांत जैसी विशाल दृष्टि का प्रतिपादन महावीर ने किया था।

हम यह संकल्प लें कि धर्म को लेकर जहां भी कहीं

विवाद हैं, संघर्ष हैं, झगड़े हैं—परस्पर बैठकर सुलझाएंगे। अगर इतना पवित्र संकल्प हमारा जागता है तो मैं मानता हूं कि हमारा महावीर जयंती मनाना बहुत सार्थक होगा। आज के इस वैज्ञानिक युग में, बौद्धिक युग में, तार्किक युग में और इस विकास के युग में महावीर हुए होते तो कुछ सिद्धांतों का और प्रतिपादन कर देते। हम देखते हैं इस युग में उनको कितनी छोटी सीमाओं में बंद कर यह देश और समाज चल रहा है। विशेषकर हमारा साधु-समाज जिस सीमा में चिंतन कर रहा है, अगर यही सीमा रही तो न तो हम युग को कुछ दे पाएंगे और न अपने अस्तित्व को तेजस्वी बनाकर रख पाएंगे। इसलिए बहुत आवश्यक है कि इस दिन को निमित्त मानकर, ऐसे पवित्र दिन को आधार मानकर कुछ नया संकल्प लें। जिससे हम समस्या को सुलझाएं ही नहीं, बल्कि दूसरों को समस्या सुलझाने का रास्ता भी दिखा सकें।

अतः सबसे पहले हम स्वयं संकल्प लें कि किसी विवाद में हम नहीं उलझेंगे। विवाद को सुलझाने के लिए अनेकांत का प्रयोग करेंगे। सापेक्षता और समन्वय का प्रयोग करेंगे और समस्या को सुलझाकर विश्व के सामने नया उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

हम भले महावीर की पूजा कम कर दें, पर वह अच्छा समझदार बेटा होगा, जो मां-बाप की बात को स्वीकार कर लेगा। उसका शैशव तो शक्तिशाली होगा ही, जीवन भी प्रस्फुटित होगा।

महावीर ने कहा—'सत्य की दिशा में अनेकांत का उपयोग करो। अनेकांत का आशय है, किसी को मान कर मत चलो। किसी वस्तु को एक दृष्टिकोण से मत देखो। अपनी पूर्व-धारणा के दृष्टिकोण से मत देखो। वस्तु में जो है, उसे ही देखो और जितने वस्तु-धर्म हैं, उतने ही दृष्टिकोणों से देखो।' महावीर ने इस सिद्धांत की स्थापना कर संप्रदायवाद के मूल पर कुठाराघात कर दिया। संप्रदाय की जड़ तब मजबूत होती है, जब सत्य की अपेक्षा मान्यता को प्राथमिकता दी जाती है। सांप्रदायिकता का सूत्र है—मान कर चलो। वस्तु को एक दृष्टिकोण से देखो। पूर्व-धारणा के दृष्टिकोण से देखो।

इसलिए महावीर का कोई अनुयाई नहीं माना जा सकता। जिन लोगों ने उन्हें समझा, वे उनके सहगामी बने। अनेकांत के दर्शन में अनुगमन के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। आचार्य हरिभद्र ने कहा—'महावीर मेरे बंधु नहीं हैं और दूसरे दार्शनिक मेरे शत्रु नहीं हैं। फिर मैं महावीर के पक्ष और दूसरों के विपक्ष में कैसे जाऊं?' महावीर ने जो कहा वह सत्य है। क्या समग्र सत्य की व्याख्या महावीर ने की? कोई भी देहधारी मनुष्य उसकी व्याख्या कर नहीं सकता। एक क्षण में वह एक ही शब्द का उच्चारण कर सकता है। यह वाणी की सीमा है। इस सीमा में सत्य के अंश का प्रतिपादन किया जा सकता है, समग्र सत्य का कभी नहीं किया जा सकता। कोई विदेह आत्मा उसका प्रतिपादन कर नहीं सकती।

सापेक्षता का आधार

वेदांत ने कहा—'ब्रह्म अनिर्वचनीय है।' भगवान बुद्ध ने कहा—'आत्मा, पुनर्जन्म आदि अव्याकृत हैं।' महावीर ने यह नहीं कहा कि सत्य अनिर्वचनीय है और यह भी नहीं कहा कि आत्मा और पुनर्जन्म अव्याकृत हैं। उन्होंने कहा—'सत्य सापेक्ष है। आत्मा, पुनर्जन्म आदि भी सापेक्ष हैं। इनके कुछ पर्यायों का प्रतिपादन किया जा सकता है। इसलिए नहीं कहा जा सकता कि सत्य अनिर्वचनीय और अव्याकृत है। इनके समग्र अस्तित्व का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, इसलिए कहा जा सकता है कि सत्य अनिर्वचनीय और अव्याकृत है।' एक टूक उत्तर देना महावीर के लिए संभव नहीं था। उन्होंने किसी भी तथ्य का प्रतिपादन किया, वह सापेक्ष-दृष्टि से किया।

सापेक्षता का आधार है—पक्षपात-शून्यता। एकांगी दृष्टिकोण का आधार है—पक्षपात। वस्तु के किसी एक धर्म के प्रति हमारा झुकाव होता है, तब हम उसके शेष धर्मों को अस्वीकार कर उसी का समर्थन करते हैं। अन्यथा जो समर्थित है, उसी का समर्थन करें; जो ज्ञात है, उसी को स्वीकृति दें—यह नहीं हो सकता। असमर्थित और अज्ञात को स्वीकृति देने पर ही यह प्रमाणित हो सकता है कि हमारा मन किसी पक्षपात से ग्रस्त और पूर्व-मान्यता से पीड़ित नहीं है।

इस तरह कहा जा सकता है कि नए ज्ञान और नए विकास की संभावना अनेकांत के क्षितिज में ही हो सकती है। इस वैज्ञानिक युग में अनेक नए तथ्य हमारे सामने आए हैं। अनेक नई दिशाएं उद्घाटित हुई हैं। क्या महावीर के अनुयाई उन्हें अस्वीकृति नहीं दे रहे हैं? सचमुच दे रहे हैं और इसीलिए दे रहे हैं कि वे महावीर के अनुयाई बन गए हैं। महावीर ने कहा था—'कोई किसी का अनुयाई न बने।' महावीर की आज्ञा का अतिक्रमण किए बिना हम उनके

अनुयाई नहीं बन सकते और उनके अनुयाई बने बिना हम वर्तमान सत्यों को अस्वीकृति नहीं दे सकते और उन्हें अस्वीकृति दिए बिना हम एकांगी नहीं हो सकते।

अनेकांत का आलोक

अनेकांत उनके लिए नहीं है, जो महावीर के अनुयाई हैं। वह उनके लिए है, जिनका महावीर के प्रति झुकाव नहीं है। महावीर का संदेश है—मध्यस्थ बनो; राग और द्वेष के दोनों तटों के बीच में रहो। न किसी के प्रति रक्त और न किसी के प्रति द्विष्ट। जिसमें राग और द्वेष हैं, उसमें समभाव नहीं हो सकता। जिसमें समभाव नहीं होता, उसमें न अहिंसा होती है, न सत्य और न अपरिग्रह। उससे सामाजिक न्याय की आशा नहीं की जा सकती। आशाएं समभाव वाले व्यक्ति से ही की जा सकती हैं और समभाव की आशा मध्यस्थ व्यक्ति से की जा सकती है। अनेकांत उनके लिए है जो मध्यस्थ हैं। अनेकांत का दर्शन केवल तत्त्ववाद का दर्शन नहीं है। वह तत्त्ववाद और आचारशास्त्र—दोनों का समन्वित दर्शन है। उसका स्पर्श प्राप्त किए बिना तत्त्व और आचार—दोनों सम्यक् नहीं हो सकते। वही तत्त्व सम्यक् है जो अनेकांत के आलोक में दृष्ट है। वही आचार सम्यक् है जो अनेकांत के आलोक में आचरित है।

अस्तित्व केवल अस्तित्व है। वह सत्य और असत्य के प्रपंच से परे है। इस प्रपंच की सृष्टि हमारी व्याख्या और हमारे प्रयोग से निर्मित है। यथार्थ को प्रकट करने का उपाय सत्य है तो हमारी दृष्टि में यथार्थ सत्य हो जाता है। उसे प्रकट करने का उपाय मिथ्या है तो हमारी दृष्टि में यथार्थ मिथ्या हो जाता है। हमारे प्रयोग का परिणाम संवादी होता है तो यथार्थ सत्य हो जाता है। हमारे प्रयोग का परिणाम विसंवादी होता है तो यथार्थ मिथ्या हो जाता है। वह सम्यक् और मिथ्या, सत्य और असत्य अस्तित्व का स्पर्श नहीं करता। वह हमारे दृष्टिकोण और प्रयोग का स्पर्श करता है।

नय : सत्यांशग्राही दृष्टि

महावीर ने अस्तित्व-बोध के जिस उपाय की खोज की, उसका नाम 'नय' है। वचन के जितने प्रकार हैं, उतने नय हैं। प्रत्येक अस्तित्व अनंतधर्मा होता है। भाषा की सीमा है और प्रतिपादन करने वाले की भी सीमा है, इसलिए नय अनंत नहीं हो सकते। अनंत धर्मों का प्रतिपादन अनंत नयों के द्वारा ही हो सकता है। किंतु, उनकी सीमा होने के कारण वे अनंत नहीं होते, इसीलिए अनेकांत की मर्यादा में इस सिद्धांत की स्थापना की गई—वचन के जितने प्रकार हैं, उतने ही नय हैं। कोई भी वक्ता हो, वह एक क्षण में वस्तु के एक ही धर्म का प्रतिपादन करेगा और एक धर्म का प्रतिपादन एक नय होगा। सब नय अपने-अपने प्रतिपादन में सत्य होते हैं। वे जब दूसरे के प्रतिपादन का निराकरण करने लग जाते हैं, तब असत्य हो जाते हैं।

अनेकांत का सिद्धांत नयों में कुछ नय सत्य और कुछ असत्य—ऐसा विभाग नहीं करता। उसके अनुसार सब नय सत्य हैं यदि वे सापेक्ष हों और सब नय असत्य हैं यदि वे निरपेक्ष हों। उनके सत्य होने की मर्यादा यह है कि वे अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन करें, दूसरे के दृष्टिकोण का निराकरण न करें, उसके प्रति तटस्थ रहें। यह तटस्थता ही उसकी सचाई है। सत्यांश की स्वीकृति शेष सत्यांशों का निराकरण कर सचाई नहीं हो सकती, किंतु उनके प्रति तटस्थ रहकर सचाई हो सकती है। सब सत्यांशों की स्वीकृति संभव नहीं है, फिर भी कुछेक सत्यांशों को प्राप्त कर हम सत्य की दिशा में प्रस्थान कर सकते हैं। अनेकांत के नयवाद ने उसी दिशा का उद्घाटन किया है।,

संप्रदाय और राजनीति का दृष्टिकोण

संप्रदाय और राजनीति का दृष्टिकोण इससे भिन्न होता है। सांप्रदायिक स्वीकृति तब तक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकती जब तक वह अपने से भिन्न स्वीकृतियों का निराकरण न करे। उसकी सचाई का आधार अपना नहीं है। किंतु उसका आधार दूसरों की असत्यता प्रमाणित करना है। दूसरी स्वीकृतियों को असत्य प्रमाणित कर वह अपनी सत्यता को प्रमाणित करती है।

इसी प्रकार राजनीति भी दूसरी राजनीतिक पद्धति की विफलता या अनुपयोगिता प्रमाणित किए बिना अपनी सफलता या उपयोगिता प्रमाणित नहीं कर पाती। इसीलिए संप्रदाय और राजनीति के मंच पर आरोप-प्रत्यारोप का चक्र चलता रहता है। उत्थान और पतन का क्रम भी उसी आधार पर चलता है। ऐसा मान लिया गया है कि अपने से भिन्न सिद्धांतों और नीतियों का खंडन किए बिना स्वीकृत सिद्धांतों और नीतियों की प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती।

अनेकांत का दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत है। उसके अनुसार स्वीकृत सिद्धांतों और नीतियों की सचाई तभी प्रकट होती है, जब वे अपने प्रति सक्रिय और दूसरों के प्रति तटस्थ होते हैं। संप्रदाय और राजनीति—ये दोनों जहां सत्य को अपनी सीमा में बांधकर अन्यत्र असत्य की स्थापना

करते हैं, वहां अनेकांत सत्य को सीमा-मुक्त कर अपनी स्वीकृति का प्रतिपादन करते हुए भी दूसरों की स्वीकृतियों का निरसन नहीं करता।

क्षणिकवाद और कूटस्थनित्यवाद का संदर्भ

महावीर के समय में अनेक मतवाद प्रचलित थे। उन्होंने उन मतवादों को अनेकांत की दृष्टि से देखा। उनका दृष्टिकोण नयचक्र की महान श्रुतराशि में गुंफित था। किंतु, काल के प्रवाह में वह विलुप्त हो गया। उत्तरवर्ती आचार्यों ने उस विलुप्त ज्ञानराशि के कुछ कणों को पुनरुज्जीवित कर समन्वय की दिशा का उद्घाटन किया। बौद्धों के क्षणिकवाद का कुछ दार्शनिक खंडन कर रहे थे, तो बौद्ध दार्शनिक नैयायिक-वैशेषिकों के कूटस्थ नित्यवाद का खंडन कर रहे थे। जैन आचार्य इन दोनों में सत्यांश देख रहे थे। उन्होंने कहा—बौद्धों का क्षणिकवाद असत्य नहीं है और नैयायिक-वैशेषिकों का कूटस्थ नित्यवाद भी असत्य नहीं है। ये इसलिए असत्य हो रहे हैं कि दोनों सापेक्ष नहीं हैं। इन दोनों को समुदित करने पर दोनों सत्य हो जाते हैं। जैन आचार्यों ने बौद्धों के क्षणिकवाद की ऋजुसूत्र नय से व्याख्या की। ऋजुसूत्र नय केवल वर्तमान क्षण को स्वीकार करता है। उसके दृष्टिकोण में वर्तमान क्षण सत्य है। वह अतीत और अनागत क्षण के प्रति उदासीन रहता है। यह दृष्टिकोण असत्य नहीं है, फिर बौद्ध-सम्मत क्षणिकवाद असत्य कैसे होगा?

नयवाद कूटस्थनित्य और क्षणिक—इन दोनों को एक ही द्रव्य में एक साथ स्वीकार करता है। ये दोनों वियुक्त नहीं हैं, केवल इन्हें देखने का दृष्टिकोण वियुक्त हो सकता है। हम वस्तु के उत्पाद और व्यय के चक्र को देखते हैं तो हमें दिखाई देता है कि सब-कुछ क्षणिक ही क्षणिक है। जब हम द्रव्य के अन्वय-सूत्र को देखते हैं—एकरूपता पर ध्यान देते हैं तो हमें कूटस्थनित्य का बोध होता है। उसके अनुसार अतीत, वर्तमान और भविष्य में द्रव्य का अस्तित्व निरंतर रहता है। यह कूटस्थनित्यता और क्षणिकता परस्पर विरोधी हैं, फिर एक द्रव्य में दोनों कैसे हो सकते हैं? ये सापेक्ष कैसे हो सकते हैं? दो भिन्न नयों के दृष्टिकोणों को समन्वित कैसे किया जा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर में अनेकांतवाद की स्थापना यह है कि विरोधी धर्मों का एक साथ होना स्वाभाविक है। इस स्वाभाविकता को बाधित नहीं किया जा सकता।

सह-अस्तित्व

अनेकांतवाद ने इन विरोधी प्रतीत होने वाले सत्यों की समन्वित स्वीकृति कर सह-अस्तित्ववाद के सिद्धांत को जन्म दिया। उसने सह-अस्तित्व की व्याख्या इन शब्दों में की—सर्वथा नित्य और अनित्य कुछ भी नहीं है। वास्तविकता वही है जो नित्य और अनित्य का समुदाय है। सर्वथा सदृश और सर्वथा विसदृश कुछ भी नहीं है। वास्तविकता वही है जो सदृश और विसदृश का समुदाय है। सर्वथा अस्तित्व और सर्वथा नास्तित्व कुछ भी नहीं है। वास्तविकता वही है जो अस्तित्व और नास्तित्व का समुदाय है। सर्वथा निर्वचनीय और सर्वथा अनिर्वचनीय का समुदाय है। यह सह-अस्तित्ववाद बहुत बड़ी सचाई है। इस सचाई के आलोक में वर्तमान के राजनीतिक वादों, सामाजिक पद्धतियों और संस्कृतियों की व्याख्या कर हम अनेक विरोधाभासों को समन्वय में बदल सकते हैं, संघर्षों को शांति और मैत्री के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। ❖

संसार ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है; त्यों-त्यों जीवनसमस्या गहरी और व्यापक हो रही है। उस पुराने जमाने में, जबकि समस्त जगत के अखंडत्वरूप वैदांतिक सत्य का प्रथम आविष्कार हुआ था, तभी से उन्नति के मूलमंत्रों और सारतत्त्वों का प्रचार होता आ रहा है। विश्वब्रह्मांड का एक परमाणु सारे संसार को अपने साथ बिना घसीटे तिल भर भी नहीं हिल सकता। जब तक सारे संसार को साथ-साथ उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ाया जाएगा, तब तक संसार के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की उन्नति संभव नहीं है। और दिन-प्रतिदिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की मीमांसा सिर्फ जातीय, राष्ट्रीय या किन्हीं संकीर्ण भूमियों पर नहीं टिक सकती। हर एक विषय को तथा हर एक भाव को तब तक बढ़ाना चाहिए, जब तक उसमें सारा संसार न आ जाए, हर एक आकांक्षा को तब तक बढ़ाते रहना चाहिए, जब तक वह समस्त मनुष्य जाति को ही नहीं, वरन समस्त प्राणिजगत को आत्मसात न कर ले। इससे विदित होगा कि क्यों हमारा देश गत कई सदियों से वैसा महान नहीं रह गया है, जैसा वह प्राचीन काल में था। हम देखते हैं कि जिन कारणों से वह गिर गया है, उनमें से एक कारण है, दृष्टि की संकीर्णता तथा कार्यक्षेत्र का संकोच।

—स्वामी विवेकानन्द

यह आधुनिकता और तात्कालिकता का जो आग्रह है, मनुष्य में, यह कोई महज खयाली फितूर या कल्पना की उड़ान नहीं है। यह कोई अनिष्ट या विभावात्मक (निगेटिव) स्थिति नहीं। जो होना चाहिए, वही यह है। 'है' और 'होना चाहिए' का अंतर महावीर की दृष्टि में नहीं है। आदर्श और यथार्थ को अलग-अलग उन्होंने नहीं स्वीकारा। जो यथार्थ वस्तु-स्थिति है, वही आदर्श वस्तु-स्थिति है। उस यथार्थ वस्तु-स्थिति में जीना ही आदर्श जीना है। 'यथार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' : यानी वस्तु का यथार्थ रूप में अवबोधन (परसेप्शन) करके, उसकी यथार्थ प्रतीति पाकर, उसके दर्शन में ही नित्य जानना, जीना, भोगना—सम्यक् दर्शन है, सम्यक् ज्ञान है, सम्यक् चारित्र है और 'सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गाः' : यानी सम्यक् देखने, जानने, जीने की यह सुसंगत स्थिति ही मोक्षमार्ग है, मुक्त जीवन को उपलब्ध करने का एकमात्र उपाय है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त' जो सत् है, पदार्थ, वही यथार्थ, वास्तविक, वस्तु-स्थिति है। वही 'रियालिटी' है—वही 'रियालिज्म' है। इस यथार्थ वस्तु-स्थिति को सम्यक् जानते हुए, जीना ही आदर्श जीना है। इस प्रकार महावीर ने आदर्श और यथार्थ के भेद को ही, वस्तु की मौलिक जमीन पर समाप्त कर दिया है। उन्होंने पाखंड के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहने दी है।

❑ आधुनिकता-बोध और महावीर ❑

❑ वीरेन्द्र कुमार जैन ❑

महावीर जयंती पर विशेष

महावीर कहते हैं कि वस्तु जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है और फिर भी अपने तात्त्विक रूप में सदा वही है। व्यक्ति जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, फिर भी तत्त्वतः सदा वही है। आधुनिकता-बोध इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

यह जगत दो रूपों में हाथ आता है : कुछ है जो जानता है, कुछ है जो जाना जाता है। कुछ है जो व्यक्ति है, कुछ है जो वस्तु है। व्यक्ति ज्ञाता है, वस्तु ज्ञेय है। एक व्यक्ति भी जब दूसरे व्यक्ति द्वारा जाना जाता है, तो वह ज्ञेय रूप में घटित होता है; यानी जो-कुछ भी ज्ञान का विषय है, ज्ञेय है, वह सब तत्त्वतः वस्तु है। तद्गत रूप से, तात्त्विक अर्थ में, ज्ञाता और ज्ञेय, जड़ और चेतन, सभी अंततः वस्तु हैं, पदार्थ हैं, प्रमेय हैं, ज्ञेय हैं। आधुनिक दार्शनिक भाषा में उसे 'ऑब्जेक्ट' कहते हैं। यहां तक कि आत्मा जब स्वयं अपने को जानता है, तो वह भी अपने ज्ञान का 'ऑब्जेक्ट' बनता है।

इस 'ऑब्जेक्ट' को महावीर ने पदार्थ कहा है। वस्तु भी कहा है और इसके मौलिक स्वरूप की दृष्टि से अंततः इसे द्रव्य कहा है। द्रव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि : 'सल्लक्षणं द्रव्यं'। यानी द्रव्य का लक्षण सत् है। सत् की परिभाषा करते हुए कहा है कि : 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्त्वं' अर्थात् यह सत् उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्त है। ये तीनों चीजें जिसमें एक साथ, संयुक्त रूप से पाई जाती हैं, वही सत् है, द्रव्य है। वही वस्तु है, वही पदार्थ है। द्रव्य का शाब्दिक अर्थ ही यह है कि वह द्रव है, प्रवाही है, परिणामी है। वह स्थिर, कूटस्थ नहीं है, वह निरंतर गतिमान है, प्रगतिमान है। वह निरंतर परिणमनशील है। उसमें सतत नित-नूतन परिणमन होता रहता है। नित-नूतन परिणाम

उत्पन्न होते रहते हैं। लेकिन मूलतः वह ध्रुव भी है : अपने स्वरूप में स्थिर भी है, नित्य भी है। यानी वस्तु अपनी मूल सत्ता में, इयत्ता में अक्षुण्ण है, ध्रुव है, अविनाशी है। उसमें कुछ ऐसा है, जो शाश्वत अस्तित्वमान है। कुछ सतत है, उसी में तो परिणमन संभव है और यह जो शाश्वत, नित्य, अविनाशी स्वरूपात्मक तत्त्व है, वही वस्तु का ध्रुवत्व है। कुछ ध्रुव है, निज स्वरूप में अक्षुण्ण है, कि जिसमें क्षण-क्षण उत्पाद और व्यय घटित होता रहता है। कुछ नित्य अस्ति है कि जिसमें निरंतर उत्पत्ति और विनाश का क्रम जारी है। इस तरह ध्रुव, सर्जन और विसर्जन की समष्टि का नाम ही द्रव्य है। स्थिति और गति, 'अस्ति' (बीइंग) और 'आविः' (बिकमिंग), इन दोनों का संयुक्त रूप ही पदार्थ है। पदार्थों का समुच्चय ही जगत है। सो जगत का भी यही स्वरूप है।

इसी से महावीर कहते हैं कि वस्तु जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, फिर भी सदा वही है। व्यक्ति जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, फिर भी सदा वही है। जगत जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है, फिर भी सदा वही है। इस जगत में प्रतिक्षण कुछ व्यतीत हो रहा है, कुछ नया उत्पन्न हो रहा है और कुछ है जो नित्य विद्यमान है। जो प्रतिक्षण व्यय और उत्पन्न हो रहा है, उसे महावीर पर्याय कहते हैं। पर्याय यानी रूप, जिसे हम 'फॉर्म' कहते हैं। जो नित्य ध्रुव है वह तत्त्व है—'कंटेंट' है : वह निज स्वरूप में अवस्थित है। स्थिति है, कि गति संभव है। ध्रुव है, कि पर्याय संभव है। कंटेंट है, कि फॉर्म प्रकट हो सकता है।

सार की बात यह कि पदार्थ नित्य-नूतन है, फिर भी शाश्वत-सनातन है। जो द्रव्य है, वह नव्य है ही। नव्यता उसका स्वभाव है। जगत तात्त्विक रूप से ही नित-नवीन है, सतत हो रहा है और ज्ञेय जगत प्रतिक्षण नित-नवीन है, तो इसको जानने वाले मनुष्य यानी ज्ञाता चैतन्य तत्त्व को भी नित-नवीन होना ही होगा। ज्ञाता-भोक्ता मनुष्य स्वभाव से ही नित-नवीन न हो तो वह ज्ञेय-भोग्य नित-नवीन जगत को जान और भोग ही कैसे सकता है?

इस वस्तु-स्थिति को एक ही शब्द में कहें तो कहना होगा कि ज्ञाता और ज्ञेय, दोनों ही प्रतिक्षण 'अप-टु-डेट' हैं। जगत और मनुष्य दोनों ही प्रतिक्षण 'अप-टु-डेट' हैं। आधुनिकता की इससे अधिक समीचीन परिभाषा और क्या हो सकती है? और महावीर से अधिक आधुनिकता का द्रष्टा और कौन हो सकता है? अपने केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) से ही महावीर वस्तु की इस अस्तित्वगत (एग्जिस्टेंशियल) स्थिति को साक्षात करते हैं। यह आनुमानिक विचार नहीं, साक्षात्कार है। इसमें विकल्प की गुंजाइश नहीं। सो केवलज्ञानी महावीर ही सच्चा 'मॉडर्न' है। वही अविकल्प और नित्य आधुनिक व्यक्ति है। क्योंकि वह अपने निज स्वरूप में निरंतर नित-नवीन होता हुआ, जगत को उसके नित-नवीन स्वरूप में जान रहा है, जी रहा है, भोग रहा है।

केवली हुए बिना पूर्ण 'मॉडर्न' होना संभव नहीं। केवली होने की साधना ही, 'मॉडर्निटी' को सही माने में जीने की साधना है। केवलज्ञान यानी पूर्णज्ञान की अवस्था। पूर्णज्ञानी होने के लिये अनिवार्य है कि निरंतर ज्ञानात्मक भाव से जीया जाए। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में जीया जाए। पूर्ण चैतन्य ही पूर्णज्ञान है : पूर्णज्ञान ही पूर्ण चैतन्य है। जो प्रतिक्षण सचेतन भाव से जीता है, वही प्रतिक्षण ज्ञान में जीता है। हर क्षण अपने भीतर उठ रहे भाव, रूप, विचार, क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रति सचेतन रहना है : हर क्षण अन्य वस्तु, व्यक्ति या जगत में घटित हो रहे भाव, विचार, रूप, क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रति सचेतन रहना है। निरंतर अपने को और अन्य को देखते-जानते, समझते रहना है। यही अप-टु-डेट जीवन जीना है। अपने प्रति और सर्व के प्रति नित्य संचेतना (अवेअरनेस) के साथ जीना : सही माने में यही 'मॉडर्न' होना है। यानी निज-स्वरूप और वस्तु-स्वरूप के प्रति अनुक्षण जागरूक रहना, यही आधुनिक अप-टु-डेट जीवन का लक्षण है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये ही महावीर ने बारंबार अपने प्रमुख अनुशास्ता गौतम को यों उद्‌बोधित किया है : 'इसी से कहता हूं, गौतम, कि एक क्षण के लिए भी प्रमाद न कर, प्रतिक्षण अप्रमत्त भाव से विचरण कर।' मतलब यह कि सतत अप्रमत्त रह, जागरूक रह, सावधान रह : निरंतर संचेतना के साथ जीवन-यापन कर।

आज हम जिसे आधुनिक या आधुनिकता-बोध कहते हैं, वह वस्तुतः क्या है? जो आज का है, जो चलन में है, जो अप-टु-डेट है, वही मॉडर्न है। फिर वह भाव-विचार हो, कि वेश-विन्यास हो, कि केश-विन्यास हो, कि प्रसाधन (टॉयलेट) हो, कि भोजन हो, कि भाषा हो, कि जगत की राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था हो, कि मानव-संबंधों की भावात्मक स्थिति हो, कि वस्तुओं का

नित-नवीन रूप में आविर्भाव हो, कि नित-नए जीवन-साधनों का आविष्कार हो, कि नित-नूतन ज्ञान-विज्ञान और कला-सृजन के प्रयोग हों : ये सब जो आज जिस रूप में, सायास या अनायास घटित हो रहे हैं : जिनका इस रूप में प्राकट्य अनिवार्य है, वही तो अधुनातन है। यानी वही मॉडर्न है, जो वर्तमान है, अभी हाल है, 'हियर एंड नाउ' है—अभी, यहां है। यह 'हियर एंड नाउ' बहुत महत्त्वपूर्ण है। यानी ज्ञाता और ज्ञेय की, भोक्ता और भोग्य की, इस क्षण, अभी और यहां जो स्थिति है, उसमें जीना ही 'मॉडर्निटी' है।

यह आधुनिकता और तात्कालिकता का जो आग्रह है, मनुष्य में, यह कोई महज खयाली फितूर या कल्पना की उड़ान नहीं है। यह कोई अनिष्ट या विभावात्मक (निगेटिव) स्थिति नहीं। जो होना चाहिए, वही यह है। 'है' और 'होना चाहिए' का अंतर महावीर की दृष्टि में नहीं है। आदर्श और यथार्थ को अलग-अलग उन्होंने नहीं स्वीकारा। जो यथार्थ वस्तु-स्थिति है, वही आदर्श वस्तु-स्थिति है। उस यथार्थ वस्तु-स्थिति में जीना ही आदर्श जीना है। 'यथार्थ श्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्' : यानी वस्तु का यथार्थ रूप में अवबोधन (परसेप्शन) करके, उसकी यथार्थ प्रतीति पाकर, उसके दर्शन में ही नित्य जानना, जीना, भोगना—सम्यक् दर्शन है, सम्यक् ज्ञान है, सम्यक् चारित्र है और 'सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गाः' : यानी सम्यक् देखने, जानने, जीने की यह सुसंगत स्थिति ही मोक्षमार्ग है, मुक्त जीवन को उपलब्ध करने का एकमात्र उपाय है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त' जो सत् है, पदार्थ, वही यथार्थ, वास्तविक, वस्तु-स्थिति है। वही 'रियालिटी' है—वही 'रियालिज्म' है। इस यथार्थ वस्तु-स्थिति को सम्यक् जानते हुए, जीना ही आदर्श जीना है। इस प्रकार महावीर ने आदर्श और यथार्थ के भेद को ही, वस्तु की मौलिक जमीन पर समाप्त कर दिया है। उन्होंने पाखंड के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहने दी है।

महावीर कहते हैं कि वस्तु अपने-आप में ठीक जैसी है, ठीक वैसी ही उसे देखो, जानो। उसके उस स्वभाव की संगति में ही उसके साथ संबंध स्थापित करो। क्या यह नितांत आज के यथार्थवादी कहे जाने वाले आधुनिक मन की ही भाषा नहीं है? अंतर केवल इतना है कि आज का आदमी, इंद्रियों और मन से ग्रहण होने वाली वस्तु की सतही स्थिति को ही समूचा वस्तु-सत्य समझ बैठता है। महावीर का यथार्थवाद इसके आगे जाता है। वह कहता है कि वस्तु के समग्र, मौलिक यथार्थ को जानो, उसके असली स्वभाव को जानो। ऐंद्रिक-मानसिक अवबोधन (परसेप्शन) उसके लिए पर्याप्त नहीं। एकाग्र, अविकल्प आत्मानुभूति-मूलक ज्ञान से ही यथार्थ वस्तु-स्थिति को साक्षात करना संभव है। वैसा साक्षात्कार हो जाने पर यथार्थ जानना और जीना सहज हो जाता है।

इसी से कहना चाहता हूं, कि आज के मनुष्य का जो यह अत्याधुनिकता, तात्कालिकता और यथार्थता का आग्रह है, वह महज कोई बे-बुनियाद खयाल नहीं है, बौद्धिक-काल्पनिक विलास नहीं है। बल्कि यही एकमात्र स्वाभाविक, अभीष्ट, वास्तविक वस्तु-स्थिति है। कोई विचार या कल्पना भी असत् और निर्मूल नहीं हो सकती। कहीं कुछ सत् है, मूल में है, मौजूद है कि उसका खयाल, भाव या कल्पना हम में उदय होती है। तो यह जो आधुनिकता-बोध है, यह 'टु-डेट' और 'अभी हाल' का भाव है, यह जो ठोस वास्तव की तलब है, उसके मूल में क्या है? इस पूछताछ में आगे बढ़ते ही, ऊपर चर्चित वह आधारभूत सत् हाथ आता है, जो स्वभाव से ही 'अप-टु-डेट' है, यथार्थ है : जो एक ग्राह्य, अनुभव्य, जीव्य वास्तविक सत्ता है।

इसी से कहना चाहता हूं कि महावीर ने जिस मौलिक सत्ता को साक्षात किया है, वह अपने प्रकृत स्वरूप में ही वास्तविक है, जीवन-परक है, गति-प्रगतिशील है। इसी से वह 'मॉडर्न' है, 'अभी और यहां' है, रेडिकल है, डायनैमिक है, नित-नूतन है।

युवक चित्त को आधुनिक, नया, क्रांति, प्रगति, विकास, विद्रोह आदि शब्द बहुत प्रिय हैं। वह उचित है और स्वाभाविक है। यौवन मात्र-देह की अवस्था नहीं, वह वस्तु का यथार्थ स्वभाव है। वह समान रूप से ज्ञाता चैतन्य और ज्ञेय वस्तु का स्वभाव है। युवा, नित-नूतन, ताजा, प्रतिक्षण विकासमान-प्रगतिमान : यही सत्ता का स्वरूप है। इसी से सत्ता चिर-युवा, चिर-सुंदर, चिरंतन प्रगतिशील है। और जो मौलिक सत्ता के साक्षात्कार में जीता है, प्रतिक्षण उसको देखता-जानता, उसके प्रति सचेतन रहता है, उससे संयुक्त रहता है, वह सदा युवा ही रहता है। इसी से ऐसा सदा-वसंत युवा योगी होता ही है। क्योंकि वह निरंतर अपने मूल स्वरूप के साथ संयुक्त रह कर जीता है।

सच्चा युवा विद्रोही होगा ही। क्योंकि यौवन वस्तु-

स्वभाव का प्रतीक है। प्रकट के जगत में, वस्तुओं और व्यक्तियों के भाव, ज्ञान, रूप, व्यवहार और संबंधों में, काल पा कर रूढ़ता, जड़ता, अवरुद्धता आ ही जाती है। प्रकट है कि वह निरंतर परिणमनशील मौलिक वस्तु-सत्य की विरोधी होती है। वस्तु की स्वभावगत नित-नव्यता, विकसनशीलता और प्रवहमानता में वह अवरोधक और बाधक होती है। सत्य-संयुक्त युवा चित्त ऐसी हर पुरातनता, जड़ता, रूढ़ता के खिलाफ विद्रोह करता है, युद्ध करता है। उसके भीतर के सत् का यह स्वाभाविक तकाजा है कि ऐसे हर जड़त्व का भंजन करके वह वस्तु और व्यक्ति की स्वगत प्रवाहिता को मुक्त करे। द्रव्य को उसकी वास्तविक प्रवाही और प्रगतिशील स्थिति में ले आए। संसार के इतिहास में जितनी भी क्रांतियां, उत्क्रांतियां, अतिक्रांतियां हुईं, उनके पीछे वस्तु के इस द्रव्यात्मक स्वरूप का तकाजा ही काम करता रहा है। विद्रोह, क्रांति, उत्क्रांति, अतिक्रांति, प्रगति, विकास, ये सब वस्तु के स्वभावगत परिणमन की ही जीवन-परक और प्रक्रियात्मक अभिव्यक्तियां हैं। जीवन-जगत में जब व्यक्ति और वस्तु अपना स्वाभाविक अभिव्यंजन, विस्तार, विकास करते हैं तो उपरोक्त क्रियाएं उस प्रक्रिया में अनिवार्य रूप से घटित होती ही हैं। कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, 'थीसिस, एंटी-थीसिस और सिंथेसिस' के रूप में इतिहास के चक्रावर्तन का उनका जीवन-दर्शन और एक अभीष्ट मांगलिक जीवन-रचना में इस वस्तु-सत्य का आचरण और मूर्तीकरण, इस सब के पीछे भी महावीर का 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्त्वं' वाला सत्ता-साक्षात्कार ही झलक रहा है। आधुनिकता-संबंधी जितने भी सांप्रतिक तत्त्वज्ञान उपलब्ध हैं, उनके पीछे आंशिक रूप से इसी तात्त्विक वस्तु-सत्य का तकाजा काम कर रहा है।

ये सारे तत्त्वज्ञान जब आग्रही और रूढ़ हो जाते हैं, मत और मान्यता बन जाते हैं, जब वे स्लॉगन, झंडा और पार्टी बन जाते हैं, तो अनजाने ही वे अन-आधुनिक और अप्रगतिशील हो उठते हैं। उनके पीछे विद्यमान वस्तु-सत्य का स्रोत रुद्ध हो जाता है। वस्तु की जो स्वभावगत परिणमनशीलता है, प्रगतिशीलता है, अनेकांतता है, नाना-धर्मिता है, वह कुंठित और अवरुद्ध हो जाती है। तब उनसे मनचाहा परिणाम उत्पन्न होना बंद हो जाता है। वस्तु के विशुद्ध, मुक्त परिणमन के साथ तदाकार जीवन-धारण से ही जीवन-जगत में अभीष्ट परिणाम पाया और लाया जा सकता है। इसी राह हर युग में, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुरूप, विश्व-मानवता की कल्याणी और मांगलिक रचना हो सकती है। तीर्थंकर चूंकि पूर्णज्ञानी होता है, चूंकि वह अपनी कैवल्य-ज्योति के प्रकाश में लोक के समस्त चराचर पदार्थों के स्वभावगत परिणमन के साथ तदाकार जीता है, इसी कारण वह लोक में एक अपूर्व अभ्युदयी क्रांति उपस्थित करने में समर्थ होता है। अपने आत्म-स्वरूप में, अपने पूर्ण ज्ञान और परम चैतन्य में पूर्णतया संस्थित होने पर, जब बिना किसी आयास के अपने-आप ही उसकी दिव्य उपदेश-वाणी प्रवाहित होती है तो मुक्त ज्ञान-चैतन्य की उस धारा में आप्लावित हो कर, समस्त लोक का कण-कण, अपने शुद्ध स्वरूप में मुक्त भाव से परिणमन करता हुआ व्यक्त होने लगता है। फलतः सत्य, ज्ञान, शक्ति, सौंदर्य, शांति और संवादिता का मानो एक नया ही विश्व एकाएक प्रकट हो उठता है। मृग और मृगेंद्र उसके चरणों में एक साथ पानी पीते हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि सृष्टि की मूलभूत संवादिता (हारमनी) उस समय लोक-जीवन में प्रत्यक्ष हो उठती है। दरअसल यह एक मौलिक और अंतर्मुख क्रांति होती है। कैवल्य-ज्योति के एक अंतरित खामोश विस्फोट से, कण-कण के सारे जड़ अवरोध चूर-चूर हो जाते हैं। सर्वत्र वस्तु और व्यक्ति, उनके पारस्परिक संबंध, परम सौंदर्य से प्रभास्वर हो उठते हैं, पूर्ण प्रेम से आप्लावित हो जाते हैं और सहज ही अपने स्वभाव से उद्‌बोधित हो उठते हैं। कालांतर में, जब तीर्थंकर के उपदेश की इस भाषातीत दिव्यध्वनि को, शब्दों में बांध कर लिपिबद्ध किया जाता है; जब लोग उनके अनुयाई और आग्रही बन जाते हैं; तब सत् फिर आवृत और अवरुद्ध हो जाता है। फलतः जीवंत सत्य के द्योतक, उसे रूढ़ और जड़ीभूत करने वाले मत-संप्रदाय, धर्म, वाद तथा एकांतवादी तत्त्वज्ञान जन्म लेते हैं। सर्वकल्याण का दावा करके, वे एक सार्वलौकिक अकल्याण का सृजन करते हैं।

इसी से कहना होगा कि तथाकथित धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, मतवाद, संप्रदाय और 'कल्ट', चाहे पुराने हों या नए, वे सब वस्तु-स्वभावगत आधुनिकता के घातक हैं, उसके विरोधी हैं। परंपरागत धर्म-पंथ हों, कि आधुनिक कहे जाने वाले मार्क्सवाद, साम्यवाद, अस्तित्ववाद, निःसारतावाद (एब्सर्डिज्म) और ऐसे ही सैकड़ों नित नए नामों से चलने वाले स्लॉगन और सिद्धांत हों अथवा मॉडर्न कहलाते फैशन या चलन हों, ये सब आग्रही और एकांतिक हो कर, अनाधुनिक हो ही जाते हैं। ये प्रचलित रहते हुए भी परिणामहीन, मृत, जड़ और रूढ़िग्रस्त पाए जाते हैं। निरंतर

प्रगतिशील विज्ञान के दावेदार भी रूढ़ मान्यताओं से कुंठित दिखाई पड़ते हैं। एक रूढ़िग्रस्त सनातनधर्मी, अंधविश्वासी, सर्वसाधारण और एक रूढ़ हो चले विज्ञानवादी में वस्तुतः कोई अंतर नहीं होता। मूलतः ये समान रूप से अवरुद्ध, अज्ञानी और अप्रगतिशील होते हैं। ऐसे फैशनेबल 'मॉडर्न' महज आधुनिकता के ताबूत होते हैं। ये आधुनिकता के घिसे-पिटे सिक्के होते हैं। देखते-देखते इनका अवमूल्यन हो जाता है।

पूर्ण और सामग्रिक ज्ञान की प्राप्ति मनुष्य की अनिवार्य अभीप्सा है। आधुनिकता के लिये मनुष्य की चिरंतन चाह और प्यास उसकी इसी स्वभावगत अभीप्सा का परिणाम है। अपने को और जगत को संपूर्ण जाने बिना उसे चैन नहीं। इस संपूर्ण ज्ञानोपलब्धि की पुकार में से ही मनुष्य अनंत कालों में नव-नूतन ज्ञान-विज्ञानों, सभ्यता-संस्कृतियों, कलाओं-काव्यों की रचना करता चला गया है। आधुनिकता-बोध की अभीप्सा, उत्कंठा और जिज्ञासा भी उसकी इसी अनिर्वार ज्ञानात्मक मुक्ति-यात्रा की एक स्वाभाविक परिणति है।

तब जरूरी है कि सही माने में अत्याधुनिक होने के लिए पहले हर व्यक्ति इकाई को अपने-आप में ज्ञानचेता हो कर, आधुनिकता को जीने की कला सीखनी होगी। वस्तु और व्यक्ति प्रतिपल नित-नवीन हो रहे हैं। यही तद्‌गत रूप से आधुनिक वस्तु-स्थिति है। ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता व्यक्ति में भी प्रतिपल नया परिणमन हो रहा है : पुरातन पर्याय व्यय हो रही है, नूतन पर्याय उदय हो रही है। ज्ञेय, दृश्य, भोग्य पदार्थ या व्यक्ति में भी यही घटित हो रहा है। तब अप-टु-डेट जीने का अर्थ यह होगा, कि ज्ञाता और ज्ञेय, भोक्ता और भोग्य के नित-नूतन परिणमन में संवादिता (हारमनी), तरतमता, सुसंगति, सामंजस्य उपलब्ध किया जाए। हम वस्तु को स्वाभाविक रूप में अभंग (अन्‌डिस्टर्ब्ड) रहने दें : स्वयं भी अपने स्वाभाविक स्वरूप में अभंग, अस्खलित (अन्‌डिस्टर्ब्ड) रहें और इसी स्वाभाविकता के धरातल पर वस्तुओं और व्यक्तियों के साथ हम एक संवादी (हारमोनियस) संबंध में जीएं। यही आधुनिकता में जीवन-धारण है। यही अहिंसा है, अपरिग्रह है, ब्रह्मचर्य है। यानी जो वस्तु-स्वभावगत शुद्ध आधुनिकता में, 'टु-डेटनेस' में जिएगा, वह अपने हित में ही, अपने स्वार्थवश ही, अनायास उत्तरोत्तर अहिंसक, अपरिग्रही, ब्रह्मचारी होता चला जाएगा।

न आप व्यक्ति या वस्तु के स्वभाव पर अपने को लादें और न अपने ऊपर उसके स्वभाव को लदने दें। भोक्ता और भोग्य, ज्ञाता और ज्ञेय, स्वरूपस्थ रह कर ही परस्पर उपग्रह करें, आदान-प्रदान करें। स्वयं अपने भाव में रहें, अन्य को अपने भाव में रहने दें। अपने पल-पल परिवर्तित होते भाव-पर्याय के साथ ही दूसरे के पल-पल परिवर्तित भाव-पर्याय को जानें, देखें, भोगें। ऐसा द्रष्टा और भोक्ता सम्यक्-दृष्टि होगा ही, और सम्यक्-दृष्टि वीतरागी होगा ही। वस्तु के सम्यक् दर्शन का अर्थ है, उसकी निरंतर परिणमनशीलता का सम्यक् अवबोधन (परसेप्शन) करना। और उसका जो सम्यक् अवबोधन करेगा वह पहले अपना भी सम्यक् अवबोधन करेगा ही। वह अपने स्वरूप में निरंतर व्यय-उदय होती नव-नूतन पर्यायों, परिणतियों, भावनाओं को देखेगा : तदनुरूप ही अन्य में देखेगा। जहां ज्ञाता और ज्ञेय में, भोक्ता और भोग्य में निरंतर नव-नूतन भाव, पर्याय, स्थिति का परिणमन है, वहां एक विशेष रूप, आकार, आस्वाद, भाव, सुगंध, स्पर्श, ध्वनि पर रुक जाना, आसक्त हो रहना, कैसे संभव है? जिस रूप या भाव पर चित्त आसक्त हो गया है वह रूप या भाव तो उसी क्षण व्यतीत हो चुका, वहां नया भाव या रूप आ चुका। तब पर-व्यक्ति या पदार्थ की परिणत स्थिति से, हमारी आसक्ति को मनचाही तृप्ति नहीं मिल सकती। स्वभाव का भंग हुआ, बलात्कार हुआ, अस्वाभाविक मांग हुई, तो दुख ही हाथ आ सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सच्ची आधुनिक चेतना, अनायास सम्यक्-दृष्टि और वीतराग हो कर ही रहेगी। स्व और पर का, व्यक्ति और वस्तु का, जीवन और जगत का सम्यक् बोध ही सच्चा आधुनिकता-बोध है। और वीतराग हुए बिना ऐसा सम्यक् बोध संभव नहीं और सम्यक् बोध के बिना सम्यक् भोग संभव नहीं।

सत्य यह है कि, वस्तु को 'टु-डेट', अभी हाल जैसी है, वैसी जानो। अहिंसा यह है कि स्वयं अपने स्वभाव में अभंग रहो, दूसरे को अपने स्वभाव में अभंग रहने दो। अपरिग्रह यह है कि वस्तु की स्वतंत्र सत्ता पर अपना अधिकार न जमाओ और न उसके मोह से अपने स्वभाव को मूर्च्छित, ग्रस्त, अधिकृत होने दो। ब्रह्मचर्य यह है कि अपने और सर्व के अखंड भोग में जीओ। जो पहले अपने स्व-रूप में अभंग आत्म-रमण करना सीख जाएगा, वही सर्व में संपूर्ण, अभंग, अटूट रमण कर सकेगा। यही यथार्थ

आधुनिकता-बोध है। यही सम्यक् चेतना-स्थिति है। इसमें जीना ही प्रतिक्षण 'अप-टु-डेट' रहना है : 'अभी और यहां' में जीना है। यह हवाई आदर्शवाद नहीं, ठोस और तलगत, शुद्ध वस्तुगत यथार्थवाद है।

आज आधुनिक चेतना के जितने लक्षण हाथ आते हैं, महावीर उन सबकी प्रतिमूर्ति हैं। आधुनिक मनुष्य अस्तित्वगत मौलिक संत्रासों को साक्षात कर उनसे जूझ रहा है : मसलन वह अंतिम एकाकीपन, अशरणता, अरक्षितता, अनिश्चयता, अनाथत्व, निर्वासन, निःसारता (एब्सर्डिटी), शून्यता, चरम निराशा, मृत्यु-भय आदि से पींड़ित है। महावीर ने अनित्यत्व, अशरण, एकत्व, अन्यत्व आदि बारह अनुप्रेक्षाओं में इसी अस्तित्वगत वेदना का अनुभावन और चिंतन किया है। आधुनिक जन नितांत स्वतंत्र, स्वच्छंद, विधि-निषेध से परे जीना चाहता है। महावीर ने कहा, व्यक्ति और वस्तु अपने मौलिक स्वरूप में ही स्वतंत्र है : उस वस्तु-स्वरूप का साक्षात्कार करके, उसमें जो जीएगा, वह अनिवार्यतः स्वतंत्र, स्वच्छंद, विधि-निषेध से परे जीएगा ही। दिगंबर महावीर से अधिक स्वच्छंद और स्वतंत्र और कौन हो सकता है?

❖

यह न समझिए कि अध्यात्म कठिन है, आत्मसाक्षात्कार, आत्मरति कठिन है। वह बिलकुल सरल, सहज है जी! प्रभुता जितना हमने कुछ देखा भी नहीं। सत्य जितना सरल कुछ भी नहीं देखा। लेकिन मनुष्य संसारी सुख को और सुख के पदार्थों को, सुख-सुविधा के सामान को सचाई से ज्यादा कीमत देता है। अवश्य ही वह भाग न जाए संसार से, ईमानदारी से जितना कर सकता है करे। लेकिन वह पैसे और प्रतिष्ठा के नाम से अपने-आप को तोलता है। कम पैसा मिला तो कहेगा मैं असफल रहा। इतना बुद्धिशाली होकर, इतना गुणी होकर, इतनी हैसियत होने पर मैं असफल रहा। तो भाई, सफलता-असफलता का नाप यदि संसार का लेना है तो संसार जैसे चाहता है ऐसे जीते चलो। अध्यात्म के रास्ते मत आओ। अध्यात्म के लिए संसार नहीं छोड़ना पड़ता, जिन गलत मूल्यों पर वह खड़ा हुआ है उन गलत मूल्यों को छोड़ना पड़ता है। यही अध्यात्म की क्रांतिकारिता है। वह हमको नहीं चाहिए।

समाज के जिन मूल्यों के कारण अशांति है, युद्ध है, हिंसा है, शोषण है, उन मूल्यों को तो अपने साथ पकड़ कर रखना चाहते हैं। फिर कहते हैं, बहुत बड़ा शोषण नहीं करना है छोटा-सा करना है, बहुत बड़ा झूठ नहीं बोल रहे हैं, छोटा झूठ बोल रहे हैं। गलत गलत है, अशुभ अशुभ है। छोटी हिंसा है या बड़ी हिंसा है, हिंसा हिंसा है। आज समाज में जो तथाकथित सज्जन हैं वे सफल नहीं होते हैं क्योंकि वे छोटे गुनहगार हैं, और जो सफल होते हैं वे बड़े गुनहगार। छोटी और बड़ी बुराइयों में झगड़ा है। ऐसे सज्जन मिलने मुश्किल हैं समाज में जो अपने जीवन में पूरी तरह सचाई को प्राथमिकता देते हों। मैं संतप्रेमी, भक्तप्रेमी, सदाचारी, धार्मिक, अध्यात्म-प्रवण लोगों की बात कर रही हूं। उनमें भी ऐसा आत्मार्थी और श्रेयार्थी मिलना मुश्किल है—जो संसारी सुख के लिए अपनी समझ को कुचलता न हो। फिर कहते हैं—मैं लाचार हूं, करना ही पड़ता है। इसलिए शांति के, प्रसाद के, समतुला का उन्मेष उसके भीतर से उठता है। बार-बार वह नापता है। उसको लगता है—दूसरों ने काला-बाजार लाख का कर दिया, मैंने तो सौ ही रुपये का किया। दूसरे ने बुराई हजारों की की, मैंने तो पांच रुपए की की। मैंने तो खुशामद छोटी की, दूसरे ने बड़ी की। वह छोटे-बड़े में अपने-आप को तोलता रहता है। अधिक बुराई, कम बुराई, छोटा गुनाह, बड़ा गुनाह, पकड़े जाने पर फिर जैसा गुनाह उतनी रिश्वत। असत्य की शृंखला चलती है।

—विमला ठकार

अनेकांत विचार वाला व्यक्ति स्याद्वाद पद्धति से कथन करता है। उसके सामने—इस अपेक्षा से यह ऐसे हो सकता है, और उस अपेक्षा से वह ऐसे भी हो सकता है—यह कथन प्रमुख रहता है। वह 'ही' के स्थान पर 'भी' के प्रयोग को महत्त्वपूर्ण मानता है। मेरी बात ही सत्य है, औरों की सत्य हो ही नहीं सकती—ऐसा दावा वह कभी नहीं करता। अनेकांत दर्शन वह है—जिससे समन्वय का, समझौते का, सापेक्षता का एवं समानता का स्वर निकलता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को नया जीवन, नई दिशा प्राप्त होती है। वर्तमान की सामाजिक, राजनीतिक अराजकता, जातिवाद, प्रांतवाद और संप्रदायवाद की उलझन को शांत बनाने का सशक्त मार्ग है—अनेकांत दर्शन। अगर हमें परस्पर कदाग्रह एवं अनाचार की आंधी को रोकना है, तो दृष्टिकोण को विशाल, तटस्थ एवं समन्वयपूर्ण बनाना ही उसका सही हल हो सकेगा।

❑ अनेकांत : विमति के बीच सहमति ❑

❑ *साध्वी विद्यावती 'द्वितीय'* ❑

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ
तस्स भुवणेक्क गुरुणो, णमो अणेगंत-वायस्स

जिसके बिना लोक-व्यवहार का निर्वहन भी सम्यक् रूप से नहीं चल सकता, उस संसार के एकमात्र गुरु अनेकांतवाद को मेरा नमस्कार हो।

प्रत्येक दर्शन या धर्म-प्रवर्तक की एक विशेष दृष्टि होती है, जो उनके दर्शन का आधार कहलाती है। जैसे भगवान बुद्ध की धर्म-प्रवर्तन में मध्यम प्रतिपदा दृष्टि है, ऐसे ही शंकराचार्य की अपनी अद्वैत दृष्टि है। ठीक इसी प्रकार जैन दर्शन के प्रवर्तक महापुरुषों की भी उसके मूल में एक विशेष दृष्टि रही है, जिसे 'अनेकांत दर्शन' कहते हैं। जैन दर्शन का समस्त आचार, विचार एवं व्यवहार इसी पर आधारित है। भगवान महावीर का यह अनेकांत दर्शन एकांगी दृष्टि का निराकरण कर, विविध विरोधी मान्यताओं का समन्वय कर, सहअस्तित्व की भूमिका तक पहुंचा कर, विविध पक्षों को माला में मणियों की तरह एक सूत्र में पिरो देने वाला विशिष्ट दर्शन है। यह सर्वविदित है कि जैन धर्म के सिद्धांतों को समझने के लिए मूल आधारभूत तीन तत्त्वों—1. अनेकांत दर्शन, 2. स्याद्वाद और 3. नयवाद को समझना अत्यंत आवश्यक है। अनेकांत यानी वस्तु के सहभागी अनंत धर्मों को स्वीकार करना। स्याद्वाद यानी अपेक्षा-भेद से वस्तु का कथन करना, भाषा में प्रयोग करना। नयवाद यानी वस्तु के किसी एक अंश को ग्रहण करना, और अन्य अंशों का खंडन नहीं करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय। अनेकांतवाद वस्तु के स्वरूप की अनेक धर्मात्मक व्याख्या करता है, अतः यह तार्किक अवधारणा है। नयवाद दूसरी दृष्टियों की अपेक्षा किसी एक दृष्टि-विशेष से वस्तु के स्वरूप को प्रकट करता है, अतः यह ज्ञानात्मक अवधारणा है।

महावीर जयंती पर विशेष

अनेकांत

जैन दर्शन का हार्द क्या है? यदि एक शब्द में बताना हो तो वह है—'अनेकांत'। जैन दर्शन की विश्व समुदाय को यह एक अलौकिक, अनुपम एवं मौलिक देन है। जैन दर्शन की यह खास मान्यता है कि वस्तु, पदार्थ बहुआयामी होता है। उसमें परस्पर विरोधी अनेक गुण-धर्म होते हैं, किंतु अपनी एकांत दृष्टि के कारण उसका समग्र बोध नहीं कर पाते। वस्तु-सत्य यह है कि 'अनेकांत दर्शन' एक ऐसा दर्शन है जो वस्तु तत्त्व को उसके समग्र

स्वरूप के साथ प्रस्तुत करता है। आज जो संकीर्ण विचारों एवं स्वार्थी चिंतन के कारण विवाद और कलुषता की घोर घटाएं छा रही हैं, ऐसी स्थिति में अनेकांत दर्शन की उपयोगिता और अधिक सिद्ध हो जाती है। अनेकांतवादी केवल अपने पक्ष की बात ही नहीं करता, वरन् वह सामने वाले पक्ष की बात को भी धैर्य के साथ सुनता है। जहां सिर्फ अपनी बात का ही आग्रह रहता है, सत्य वहां से हजारों कोसों दूर रह जाता है। अनेकांत विचार वाला व्यक्ति स्याद्वाद पद्धति से कथन करता है। उसके सामने—इस अपेक्षा से यह ऐसे हो सकता है, और उस अपेक्षा से वह ऐसे भी हो सकता है—यह कथन प्रमुख रहता है। वह 'ही' के स्थान पर 'भी' के प्रयोग को महत्त्वपूर्ण मानता है। मेरी बात ही सत्य है, औरों की सत्य हो ही नहीं सकती—ऐसा दावा वह कभी नहीं करता। अनेकांत दर्शन वह है—जिससे समन्वय का, समझौते का, सापेक्षता का एवं समानता का स्वर निकलता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को नया जीवन, नई दिशा प्राप्त होती है। वर्तमान की सामाजिक, राजनीतिक अराजकता, जातिवाद, प्रांतवाद और संप्रदायवाद की उलझन को शांत बनाने का सशक्त मार्ग है—अनेकांत दर्शन। अगर हमें परस्पर कदाग्रह एवं अनाचार की आंधी को रोकना है, तो दृष्टिकोण को विशाल, तटस्थ एवं समन्वयपूर्ण बनाना ही उसका सही हल हो सकेगा। अनेकांत का अर्थ है—**अनेके अन्ताः धर्माः यस्मिन् असौ अनेकांत**—अर्थात् वस्तु में विद्यमान अनंत धर्मों को युगपत् यानी एक साथ स्वीकार करना—अनेकांत है। वस्तु के एक दिखाई देने पर भी, उस पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर उसकी अलग-अलग विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। महा मनीषियों ने कहा है—अस्तित्व और नास्तित्व, विधि और निषेध—दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं, अपितु एक-दूसरे के सहगामी हैं, पूरक हैं। दोनों साथ में रहकर ही पदार्थ को पूर्णता प्रदान कर सकते हैं। जो मेरा है, केवल वही सत्य नहीं है, अपितु दूसरे के पास जो है, वह भी सत्य हो सकता है। सिंधु में जैसे सरिताएं मिलती हैं, वैसे ही अनेकांत दृष्टि में समस्त दृष्टियां आकर मिल जाती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि जो मेरा है वही अच्छा है, यह नहीं सोचकर—जो अच्छा है वह मेरा है—ऐसा चिंतन विकसित किया जाए।

आज के समस्या-बहुल विश्व के लिए अनेकांत दर्शन जीवनी-शक्ति का काम कर सकता है। अनेकांत का सिद्धांत है, मुख्य-गौण का सिद्धांत या चिंतन। एक समय में किसी एक को आगे लाओ और दूसरे को गौण कर दो। इस मुख्य और गौण बनाने की प्रक्रिया से बदलते हुए सत्य को समझा जा सकता है। हमारी गति का क्रम है—एक पैर आगे आता है, दूसरा पैर पीछे चला जाता है। दोनों पैरों की इस सापेक्षता से ही गति संभव बनती है। बिलौने में दोनों हाथों का भी यही क्रम है। पहले क्षण दायां हाथ आगे होता है, तब बायां हाथ पीछे चला जाता है और दूसरे क्षण दायां हाथ पीछे रहता है, तब बायां हाथ आगे आ जाता है। दोनों हाथ एक साथ आगे रहें या पीछे रहें, तो नवनीत नहीं निकल सकता। यहां यह समझना बहुत जरूरी होगा कि एकांगी दृष्टिकोण से सत्य को कभी खोजा नहीं जा सकता। प्राचीन दार्शनिकों के युग में कैमरे का आविष्कार नहीं हुआ था, वरना जैसे कैमरे से विभिन्न कोणों से एक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न मुद्रा के फोटो लिए जाते हैं—यह बात समझ में आती है, वैसे ही दार्शनिक सिद्धांत अनेकांत को बुद्धिगम्य बनाने के लिए इस उपमा का उपयोग सरलता से कर सकते हैं। आज मुद्राएं ही नहीं, उपग्रहों की ऊंचाई से भी काफी चित्र खींचे जा रहे हैं तथा समुद्रतल की गहराई से भी चित्र खींचे जा रहे हैं। इन सबसे सत् के कितने कोण प्रकट हो रहे हैं! इसी प्रकार अनेकांत दर्शन से भी वस्तु के अनेक धर्मों को समझा जा सकता है। एक ही व्यक्ति पिता-पुत्र, दादा-पौत्र, मामा-भानजा, काका-भतीजा इत्यादि सभी हो सकता है। किंतु, उसे ऐसे सब-कुछ एक साथ नहीं कहा जा सकता। उसकी एक समय में एक विशेषता को मुख्य और शेष को गौण रखकर ही कहना होगा। यहां गौण रखने का अभिप्राय उसकी विशेषताओं को अस्वीकार करना नहीं है और न ही संशय या अनिश्चय ही है; बल्कि व्यावहारिकता का निर्वाह है।

स्याद्वाद

जैन दर्शन ने सदा मौन रहने की बात ही नहीं सिखलाई। उसने वाणी के प्रयोग की कला भी सिखलाई है। उसका नाम है **'स्याद्वाद'**। वस्तु कथंचित् सदृश है—कथंचित् एकोऽहं—मैं किसी अपेक्षा से एक हूं। कथंचित् अनेकोऽहं—मैं किसी अपेक्षा से अनेक हूं। यह तथ्य स्पष्ट है कि यदि वस्तु के संबंध में हमारा ज्ञान एक सीमित दृष्टि को लेकर होता है तथा उसे ही सत्य घोषित करने का आग्रह रहता है तो हमारा चिंतन मिथ्या हो जाएगा। क्योंकि कोई भी वस्तु किसी एक ही धर्म-विशेष से

जुड़ी हुई नहीं है। जैन ग्रंथों में एक उदाहरण आता है—पांच अंधे व्यक्ति बाजार में हाथी देखने गए। सबने हाथ के स्पर्श से हाथी को जानना चाहा। वे हाथी के शरीर के विशिष्ट, किंतु भिन्न-भिन्न भागों का स्पर्श करते हैं। जो पूंछ का स्पर्श करता है, वह कहता है—हाथी रस्सी जैसा होता है। शरीर के स्पर्श वाला हाथी को दीवार जैसा बताता है। पांव छूने वाला—स्तंभ जैसा, कान छूने वाला सूपड़े जैसा, दांत के हाथ लगाने वाला मूसल जैसा एवं सूंड के स्पर्श वाला कदली जैसा बताता है। इस प्रकार वे परस्पर विवाद प्रारंभ कर देते हैं कि हाथी वस्तुतः ऐसा-ऐसा ही होता है। तुम गलत हो, मैं सही हूं। क्योंकि मैं अभी-अभी हस्त-स्पर्श करके आया हूं। ऐसे हाथी के एक अंग को ही संपूर्ण हाथी मान लेना मिथ्या हो जाता है। क्योंकि हाथी केवल रस्सी, दीवार, स्तंभ, सूपड़ा, मूसल एवं कदली के समान नहीं है। उन सब अंगों से युक्त प्राणी का नाम हाथी है। अतः प्रत्येक वक्तव्य को सापेक्ष रूप से प्रस्तुत करना ही स्याद्वाद कथन है। जैन दर्शनानुसार यह सापेक्षता प्रत्येक वाक्य के पहले 'स्याद्' अव्यय लगाकर प्रकट की जा सकती है। अतः हाथी स्तंभ जैसा है, कहने से पूर्व हाथी स्तंभ जैसा भी है, कहना चाहिए। एक बात स्पष्ट है कि स्याद्वाद अभिव्यक्ति की प्रक्रिया होने के कारण भाषात्मक अभिव्यक्ति से अधिक संबद्ध है।

नयवाद

वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने वाले और अन्य अंशों का खंडन नहीं करने वाले, ज्ञाता के अभिप्राय को **'नय'** कहते हैं। नय को विस्तार से जानने के लिए उसके सात भेद होते हैं—1. नैगम नय, 2. संग्रह नय, 3. व्यवहार नय, 4. ऋजुसूत्र नय, 5. शब्द नय, 6. समभिरूढ़ नय एवं 7. एवंभूत नय। संक्षेप में नय के दो भेद भी होते हैं—1. निश्चय नय, 2. व्यवहार नय। निश्चय नय का अर्थ है—तात्त्विक अर्थ का कथन करने वाले विचार जैसे—भौंरा पांच वर्ण वाला होता है। लोक-प्रसिद्ध अर्थ को मानने वाले विचार को व्यवहार नय कहते हैं—जैसे भौंरा काला होता है। वचन के जितने प्रकार हैं, नय उतने होते हैं। कोई भी वक्ता हो, वह एक क्षण में वस्तु के एक ही धर्म का प्रतिपादन कर सकता है, और वह एक ही धर्म का प्रतिपादन एक नय होता है। सब नय अपने-अपने प्रतिपादन में सत्य होते हैं। अनेकांत का सिद्धांत कुछ नय सत्य, कुछ असत्य—ऐसा नहीं है। उसके अनुसार सब नय सत्य हैं, यदि वे सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में सम्यक् दर्शन का अर्थ है—अनेकांत एवं मिथ्या दर्शन का अर्थ है एकांत। अनेकांत की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—एक मूल में रहता है, दूसरा फूल में रहता है। फूल हमें दिखाई देता है। मूल गहरे में होता है, सामने नहीं दिखाई देता। कभी-कभी कुछेक लोग मूल को उखाड़ने का प्रयत्न करते हैं, तो कभी-कभी कुछ लोग मूल पर ही पूरा ध्यान केंद्रित कर लेते हैं। सामने दिखाई देने वाले फूल को अस्वीकार करते हैं। वे भूल जाते हैं कि मूल का विकसित रूप ही फूल है। मूल है—तभी फूल है। मूल के अभाव में फूल का भी अभाव निश्चित है। अतः फूल को जानने का अर्थ है—मूल को भी जानना। केवल फूल को जानना एकांगी दृष्टिकोण है। वही उलझन का, विद्वेष का और असहिष्णुता का कारण बनता है। अनेकांत ने हमेशा मूल एवं फूल—दोनों को स्वीकार किया है। मूल का भी मूल्य है, और फूल का भी मूल्य है। दोनों के सहअस्तित्व को स्वीकार करना ही अनेकांत है। अनेकांत वस्तुतः एक महान समन्वयवादी दर्शन है, जो सभी राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय एवं विश्वजनीन समस्याओं का हल निकाल सकता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की अहिंसा यात्रा में हिंदुओं, जैनियों ने ही नहीं, मुस्लिम व सिक्ख बंधुओं ने भी शांति का संदेश पाया और उलझे दिलों के मैल को धोकर मैत्री भाव का दीपक जलाया। यह उनके अनेकांत विचारों की सूझ-बूझपूर्ण मेधा का ही सुपरिणाम था। अनेकांत का आशय है—'किसी एक ही वस्तु को मानकर मत चलो; किसी वस्तु को एक ही दृष्टिकोण से मत देखो, अपनी पूर्वधारणा की नजर से मत देखो। वस्तु जो है—उसे उसी रूप से देखो और जितने वस्तु-धर्म हैं, उतने ही दृष्टिकोणों से देखो।'

अनेकांतवाद का सिद्धांत केवल दार्शनिक एवं धार्मिक जगत को ही प्रभावित करने वाला सिद्धांत नहीं है, अपितु राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक, सभी विवादों का हल करना इसी में सन्निहित है। आज का राजनीतिक जगत भी वैचारिक संकीर्णता से परिपूर्ण है। वर्तमान में समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद आदि अनेक शासन प्रणालियां हैं। वे प्रणालियां प्रचलित हैं—मात्र इतना ही नहीं है, किंतु वे एक-दूसरे को समाप्त करने के लिए अग्रसर हैं। विश्व के सभी राष्ट्र खेमों में बंटे हुए हैं और प्रत्येक खेमे का अग्रणी राष्ट्र अपना प्रभाव क्षेत्र विस्तृत करने के लिए दूसरे राष्ट्र के विनाश में तत्पर है। इस विषम परिस्थिति में आज के राजनीतिक जीवन में अनेकांत के दो व्यावहारिक फलित—

वैचारिक सहिष्णुता एवं समन्वयपूर्ण आचरण अत्यंत उपादेय हैं। राजनीतिक प्रजातंत्र के क्षेत्र में प्रजातंत्र प्रणाली वस्तुतः राष्ट्रीय स्याद्वाद का ही रूपक है। इस परंपरा में बहुमत द्वारा गठित सरकार, अल्पमत दल को अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार मान्य करती है और यथासंभव उससे लाभ भी उठाती है। तब जनहित के संरक्षण एवं मानवीय पाशविक वृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए अगर अनेकांत का सहारा लिया जाय तो अवश्य ही विरोध के बीच भी समन्वय स्थापित हो सकता है। साथ ही साथ, युद्ध व वैमनस्य के बादल शीत-समीर एवं मैत्रीभाव में बदल सकते हैं। अतः लगता है—अनेकांत दर्शन सभी विवादों एवं आतंकवाद का अचूक एवं प्रभावशाली हल है। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-
कविता भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

अनुभूति

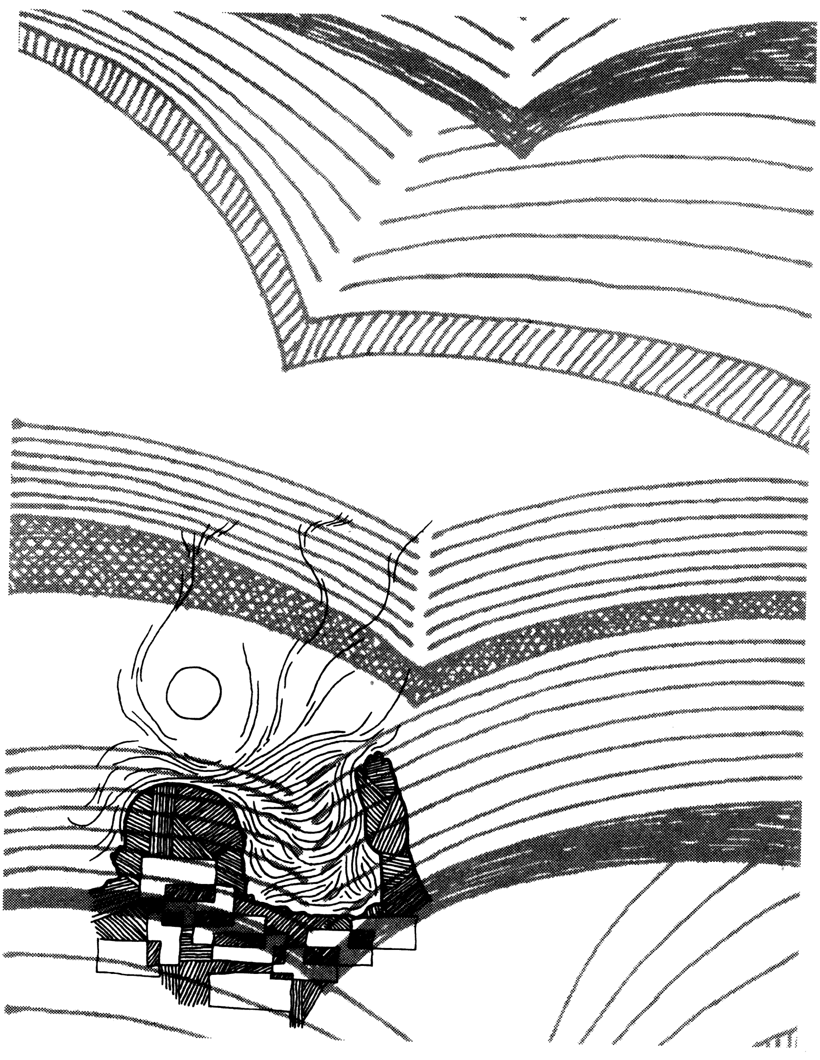

व्यष्टि और समष्टि नहीं है भेद
भेद उपजाता भ्रम × × ×
व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप
चिद् घन-आनंद-कंद।

—महाकवि निराला

आचार्य भिक्षु ने सत्य की खोज में अपना जीवन खपा दिया। साधना की गहराइयों में उतरकर उन्होंने जिस सचाई का साक्षात्कार किया, वही उनका दर्शन बन गया। उन्होंने जिस सत्य को अभिव्यक्त किया, उसके पीछे उनकी साधना और तपस्या का तेज था। यही वजह है कि आज 200 वर्षों के बाद भी उनका चिंतन और दर्शन प्रासंगिक है, चिर नवीन है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में—'आचार्य भिक्षु द्वारा जो सत्य व्यक्त हुआ, वह इतना चिरंतन था कि उसे शाश्वत की तुला से तोला जा सकता है। वह इतना सामयिक है कि उसे वर्तमान की धारा का स्रोत कहा जा सकता है।'

❑ सच्चं लोयम्मि सारभूयं ❑

❑ साध्वी मुदितयशा ❑

सत्य कभी भी तत्काल व अल्प प्रयास से मिलने वाली वस्तु नहीं है। उसके लिए दीर्घकाल तक तीव्र पराक्रम करना पड़ता है। सुख, सुविधा, पद, प्रतिष्ठा और व्यामोह को छोड़कर अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। आचार्य भिक्षु महान सत्यसंधित्सु और उच्चकोटि के साधक पुरुष थे। उन्होंने आगम की पवित्र वाणी **सच्चं लोयम्मि सारभूयं** को आधार मानकर सत्य की अन्वेषणा की। सत्यशोध की दुहाई देने वाले तथा सत्यपथ की साधना का संकल्प लेने वाले बहुत मिल सकते हैं, पर सत्यसाधना को जीवन का ध्येय बनाकर अप्रकंप भाव से उस पर आगे बढ़ने वाले बहुत विरले होते हैं। आचार्य भिक्षु उनमें से एक थे।

आचार्य भिक्षु (चैत्र शुक्ला नवमी) अभिनिष्क्रमण

आचार्य भिक्षु आजीवन कठिनाइयों से जूझते रहे। उन्होंने सत्य की प्राप्ति के लिए लंबा संघर्ष किया। उनका दृढ़ संकल्प था कि प्राणों की बाजी लगा देना मंजूर है, पर सत्य के साथ समझौता कभी नहीं करूंगा। उनकी इस अटूट सत्यनिष्ठा को अभिव्यक्ति देते हुए जयाचार्यश्री ने लिखा—

भारी गुण भीक्खू तणां, कह्या कठा लग जाय।
मरण धार सुध मग लियौ, कुमिय न राखी कांय।।[1]

सत्यशोध का पहला सोपान : जिज्ञासा

विकास का प्रासाद योग्यता की नीवं पर ही खड़ा होता है। योग्यता हो तो छोटी अवस्था में ही विकास की दिशाएं उद्घाटित होने लग जाती हैं। योग्यता नहीं हो तो बड़ी अवस्था वाला व्यक्ति भी विकास की दौड़ में बहुत पीछे रह जाता है। सत्यशोध का पहला पायदान है—जिज्ञासा। आचार्य भिक्षु प्रारंभ से ही जिज्ञासु वृत्ति के थे। उनकी जिज्ञासावृत्ति और सत्यान्वेषिणी मनीषा बचपन में ही जाग्रत हो चुकी थी। इसकी एक झलक उनके गृहजीवन विषयक इतिवृत्त में देखने को मिलती है।

आचार्य भिक्षु के माता-पिता गच्छवासी (यति) संप्रदाय के अनुयाई थे। उनकी अध्यात्म यात्रा का पहला पड़ाव यति संप्रदाय ही बना। वे उनके संपर्क में आए, पर वहां का वातावरण उनके जिज्ञासु मन को संतुष्टि नहीं दे सका। तदनंतर वे पोतियाबंद संप्रदाय के संपर्क में आए, लेकिन वह भी उनके लिए ज्यादा समाधानकारक सिद्ध नहीं हुआ। आखिर वे स्थानकवासी संप्रदाय की एक शाखा के प्रमुख आचार्य रघुनाथजी के संपर्क में आए और उनके अनुयाई बने।[2]

इस तरह विभिन्न संप्रदायों के संपर्क में आने से उनकी धर्मविषयक चिंतनशक्ति एवं तत्त्वविश्लेषण की मेधा प्रखर हो उठी। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि उनकी सत्यमनीषा प्रव्रजित होने से पूर्व ही प्रकाश में आ चुकी थी।

अनाग्रह की पृष्ठभूमि पर सत्य की अन्वेषणा

सत्य की शोध साधना का एक महान अनुष्ठान है। इस अनुष्ठान में वही साधक सफल बनता है जो आग्रह की कारा से मुक्त रहता है। वह सत्य की विराटता को सीमा में आबद्ध नहीं करता। आचार्य भिक्षु ने अनाग्रह की पृष्ठभूमि पर सत्य की अन्वेषणा की। आचार्य भिक्षु के युग का प्रसिद्ध चर्चनीय विषय रहा है—**किवाड़ और किवाड़िया**। 'किवाड़' बड़ा होता है, अतः चूलिए के भीतरी भाग की प्रमार्जना कर पाना संभव नहीं। जीव वध की संभावना को देखते हुए आचार्य भिक्षु ने किवाड़ को खोलना विधिसम्मत नहीं माना। 'किवाड़िया' छोटा होने से उसका प्रतिलेखन और प्रमार्जन आसानी से किया जा सकता है। अतः 'किवाड़िया' खोला जा सकता है। आचार्य भिक्षु ने इस विषय में उठने वाले प्रश्नों का समाधान दिया। **किवाड़िया का चौढ़ालिया** लिखकर अपनी मान्यता का पूरी दृढ़ता से समर्थन किया, लेकिन वहां भी आग्रह को पनपने का अवकाश नहीं दिया और न ही भविष्य की संभावनाओं का द्वार बंद किया। उन्होंने यही लिखा—

मौने तो कवाड़िया रो दोष न भाषै,
जाणै न सुध ववहार।
जो निसंक दोष कवाड़िया में जाणो
तो मत बहरजो लिगार।।[3]

मुझे 'किवाड़िया' खोलने में कोई दोष प्रतीत नहीं होता। शुद्ध व्यवहार समझकर ही मैंने 'किवाड़िया' खोलने की स्थापना की है। यदि इसमें निश्चित दोष की प्रतीति हो तो उसे खोलकर भिक्षा आदि ग्रहण मत करना। एक सत्यद्रष्टा मनीषी ही इतना विनम्र और अनाग्रही हो सकता है। यदि आचार्य भिक्षु के संपूर्ण वाङ्मय की परिक्रमा की जाए तो सर्वत्र उनकी विनम्रता, ग्रहणशीलता और सम्यक् सोच के प्रतिबिंब नजर आएंगे।

सामान्यतया किसी भी संगठन का नेता यही चाहेगा कि मैं जो भी कहूं उसका अक्षरशः पालन किया जाए। हर परिस्थिति में उस पर अमल किया जाए। आचार्य भिक्षु की अनुभववाणी से निकलने वाला स्वर सर्वथा भिन्न था। उन्होंने बार-बार यही कहा—**मैं जो भी कह रहा हूं उसमें उत्तरवर्ती आचार्य अपेक्षित समझें तो संशोधन व परिवर्तन कर सकते हैं।**

जो व्यक्ति सत्य को जीता है, उसकी अनुभवप्रसूत वाणी किसी को बांधती नहीं, बल्कि वह चिंतन को स्वतंत्रता का उन्मुक्त आकाश प्रदान करती है। आचार्य भिक्षु ने अपने चिंतन से कभी किसी को बांधा नहीं। उन्होंने मर्यादाएं बनाईं, पर उन्हें किसी पर थोपने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने परिवर्तन को सदा सावकाश माना। प्रथम मर्यादा पत्र की परिसमाप्ति पर उन्होंने यही लिखा—

मैंने जो भी मर्यादाएं की हैं, सब साधुओं के मनोभावों को देखकर, उन्हें राजी करके, उनसे यह कहलवाकर कि—ये होनी चाहिए—की हैं। जिनका आंतरिक विचार स्वच्छ हो, वे ही इस परिपत्र पर हस्ताक्षर करें। इसमें शर्माशर्मी जैसी कोई बात नहीं है। मुंह पर अन्य तथा मन में अन्य—यह साधु के लिए उचित नहीं है।[4]

आचार्य भिक्षु के ये बोल उनकी अनाग्रही मानसिकता और सत्यनिष्ठ सोच का सुंदर दिग्दर्शन है। एक सत्य-शोधार्थी कितना विनम्र और अनाग्रही हो सकता है, इसका स्वयंभू साक्ष्य है।

सत्यनिष्ठा और निर्भीकता—दोनों सहयायी

अभय और साहस सत्य का अनन्य सहचारी है। सत्य की शोध को जीवन का ध्येय बनाकर साधना करने वाला न मौत से भयभीत होता है और न आलोचनाओं के अंधड़ से विचलित होता है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता में भी वह साहस और संकल्प के सहारे आगे बढ़ जाता है। आचार्य भिक्षु अद्भुत साहस के धनी थे। वे यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर स्पष्टोक्ति करने से भी घबराते नहीं थे। उन्होंने **181 बोल की हुंडी** में तत्कालीन साधु समुदाय में व्याप्त आचार शैथिल्य पर जिस ढंग से प्रहार किया, उस युग में वह एक विलक्षण व साहसभरा कदम था।[5]

सत्यनिष्ठ व्यक्ति सदा यथार्थ का पक्षपाती होता है। आचार्य भिक्षु ने भगवान की आज्ञा को सर्वोपरि माना। उनकी आस्था के वे अनन्य केंद्र थे। इसके बावजूद उन्होंने महावीर द्वारा गोशालक पर की गई अनुकंपा को उचित नहीं ठहराया। उसे मोहानुकंपा मान छद्मस्थ अवस्था की एक चूक ही बताया। उन्होंने स्पष्ट कहा—

छह लेश्या हुंती जद वीर में जी हूंता आठूंई कर्म।
छद्मस्थ चूका तिण समें जी मूरख थापै धर्म।।[6]

आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी मुनि भारमलजी ने इस पद को जब सुना तो कहा—'गुरुदेव! यह पद तो बहुत कटु है।' आचार्य भिक्षु ने प्रतिप्रश्न की भाषा में कहा—'कटु तो है, पर सच से परे तो नहीं है।' भारमलजी बोले—'नहीं।'

भिक्षु ने कहा—'तब इसे यथावत रहने दो।' ऐसी स्पष्ट और निर्भीक उक्ति सत्य का अनन्य उपासक और अन्वेषक ही कर सकता है।

आचार्य भिक्षु ने सत्य की खोज में अपना जीवन खपा दिया। साधना की गहराइयों में उतरकर उन्होंने जिस सचाई का साक्षात्कार किया, वही उनका दर्शन बन गया। उन्होंने जिस सत्य को अभिव्यक्त किया, उसके पीछे उनकी साधना और तपस्या का तेज था। यही वजह है कि आज 245-46 वर्षों के बाद भी उनका चिंतन और दर्शन प्रासंगिक हैं, चिर नवीन हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में—'आचार्य भिक्षु द्वारा जो सत्य व्यक्त हुआ, वह इतना चिरंतन था कि उसे शाश्वत की तुला से तोला जा सकता है। वह इतना सामयिक है कि उसे वर्तमान की धारा का स्रोत कहा जा सकता है।'

साधना है प्रतिस्रोत में गमन

प्रबल सत्यनिष्ठा व आत्मकल्याण की तीव्र अभीप्सा ने आचार्य भिक्षु की साधना को नया आयाम दिया। सामान्य व्यक्ति अनुस्रोत में चलता है। महापुरुष प्रतिस्रोतगामी होते हैं। आचार्य भिक्षु की प्रतिस्रोतगमन की चेतना गृहजीवन में ही प्रस्फुटित हो चुकी थी। उन्होंने गृहजीवन में रहते हुए संयम की पूर्व-भूमिका के रूप में कठोर ब्रह्मव्रत की साधना की। लंबे समय तक एकांतर उपवास किए। इन सबके साथ उन्होंने स्वाद विजय की दृष्टि से जो प्रयोग किए, वे उनको एक उत्कट साधक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

आचार्य भिक्षु ने दीक्षा से पूर्व एक बार कैर का ओसाया हुआ पानी तांबे के बर्तन में काफी समय तक रखकर बाद में उसे पीया। उससे काफी कष्ट का अनुभव हुआ। बाद में संवत् 1849 में स्वामीजी ने मुनि हेमराजजी से इस प्रसंग की चर्चा करते हुए कहा—'वैसा पानी पीने का काम फिर कभी नहीं पड़ा'।[7]

साधना का पर्याय है—सहिष्णुता

साधना की पहली कसौटी है—सहिष्णुता। आगम साहित्य में परीषहों की एक लंबी तालिका मिलती है, जिन्हें मुनि जीवन में आने वाले कष्टों की संभावित सूची कहा जा सकता है। आचार्य भिक्षु ने अपने जीवन में बहुत सहा। शारीरिक कष्टों को सहा, मानसिक यातनाओं को सहा, स्थान के अभाव को सहा, भूख और तृषा को सहा, आक्रोश और अपशब्दों को सहा, तिरस्कार और मुक्कों की मार को सहा, उस लौहपुरुष का धृतिबल और सहिष्णुता का मनोभाव विलक्षण था।

अभिनिष्क्रमण का पहला दिन आचार्य भिक्षु की सहिष्णुता की कसौटी का दिन बन गया। उनके अभिनिष्क्रमण के साथ ही पूरे बगड़ी नगर में एक उद्घोषणा कर दी गई—'भीखणजी को ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं देगा, यह श्रीसंघ की आण है।' शहर में स्थान न मिलने की संभावना देख आचार्य भिक्षु ने आगे विहार कर दिया, पर प्रकृति ने भी मानो सहयोग न करने की ठान ली थी। भयंकर तूफान शुरू हो गया। उस विषम परिस्थिति में भी आचार्य भिक्षु की तितिक्षा मेरु की भांति अडोल थी। वे संघर्षों के सामने न रुके और न झुके। वे न पुनः गांव की ओर मुड़े और न अगले गांव की ओर आगे बढ़े। उन्होंने उस दिन का रात्रि प्रवास श्मशान की छतरियों में किया।

जयाचार्यजी ने आचार्य भिक्षु के जीवनवृत्त में उस प्रथम दिन का जो चित्र प्रस्तुत किया है, सचमुच हृदयग्राही और मन को छूने वाला प्रसंग है। जयाचार्यश्री ने लिखा है—

जो रहिवा भिक्खू भणी जागा दीधी जांण।
सर्व साथ सुणजो सही संघ तणी है आंण।।
आया बगड़ी बारणै बावल अधिक विशेख।
बाजी तब पग थांमीया भीक्खू परम विवेक।।
जैतसिंह जी री जिहां, छत्र्यां अधिक उदार।
देखीनै आया जिहां, बैठा छत्र्यां मझार।।[8]

आत्मविकास का संकल्प और लोमहर्षक तपस्या

साधना का आधारभूत घटक तत्त्व है—संकल्प बल। आचार्य भिक्षु का संकल्प बल विलक्षण था। उनका एक ही संकल्प था—आत्मकल्याण और सिर्फ आत्मकल्याण। अपने संकल्प की पूर्णाहुति हेतु उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। एकांतर चौविहार उपवास, रेगिस्तान की झुलसाने वाली गर्मी और नित्य आतापना। पारणे के दिन भी स्वामीजी सहवर्ती संतों के साथ यथाप्राप्त आहार को लेकर जंगल में चले जाते। आहार को वृक्ष की छांह में रखकर आतापना लेते। स्वाध्याय, ध्यान आदि नित्यक्रम को संपन्न करने के बाद पारणा करते। यह लोमहर्षक तपस्या उनकी उत्कट साधना के मनोभाव का परिचायक है। आचार्य भिक्षु ने मुनि हेमराजजी के समक्ष अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा—

म्है उणा ने छोड़्या जद पांच वर्ष तांई तो पूरो

आहार न मिल्यो...। आहार-पाणी जांच नै उजाड़ में सर्व साध परहा जांवतां। रूंखरा री छायां आहार पाणी मेलनै आतापना लेता, आथण रा पाछा गांम में आवता। इण रीते कष्ट भोगवता। कर्म काटता। म्हैं या न जाणता म्हारों मारग जमसी नै म्हांमै यूं दीख्या लेसी नै यूं श्रावक-श्राविका हुसी। जाण्यो आत्मा रा कारज सारस्यां, मर पूरा देस्यां, इम जाण नै तपस्या करता।[9]

धैर्य और पराक्रम का अद्‌भुत संगम

जीवन की तीन अनिवार्य अपेक्षाएं मानी.गई हैं— भोजन, वस्त्र और आवास। आचार्य भिक्षु लंबे समय तक इनसे जूझते रहे। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते, उससे पूर्व ही विरोध की एक तीव्र लहर वहां पहुंच जाती। वे जहां भी गए, स्थानाभाव की समस्या सर्वत्र बनी रही।

संवत् 1823 में आचार्य भिक्षु ने पाली में चातुर्मास किया। वहां उन्हें बीच में ही स्थान बदलना पड़ा। स्वामीजी उदयपुर पधारे। विरोधी लोगों ने षड्यंत्र रचा और महाराजा को भी भ्रांत बना दिया। महाराजा ने भी पूरा विमर्श किए बिना ही उदयपुर से निष्कासन का आदेश दे दिया। इसी तरह स्वामीजी को नाथद्वारा में भी चातुर्मास के मध्य ही शहर छोड़ना पड़ा।[10]

आहार की समस्या ने आचार्य भिक्षु का वर्षों तक पीछा नहीं छोड़ा। जयाचार्यश्री ने उक्त स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है—

पंच वर्ष पहिछाण अन्न पिण पूरो ना मिल्यो।
बहुलपणै वच जाण घी चोपड़ तो ज्यांहि रह्यो।।[11]

आचार्य भिक्षु के लिए वस्त्र की दुर्लभता वर्षों तक बनी रही। इसलिए जब कभी कपड़ा आता, गुरु-शिष्य के बीच लंबी मनुहार चलती थी। एक बार अतीत के अनुभव सुनाते हुए आचार्य भिक्षु ने मुनि हेमराजजी से कहा— **कपड़ो कदाचित् वासती मिलती ते सवा रुपया री। भारमलजी कहता पछेवरी आपरै करो। जद स्वामीजी कहता—एक चोलपट्टो थारै करो, एक म्हारै करो।** इस प्रकार आचार्य भिक्षु अनेक कठिनाइयों के घेरे में रहकर भी कभी अधीर नहीं बने। उनकी प्रसन्नता कभी खंडित नहीं हुई। **नन्नत्थ णिज्जरट्ठयाए** का लक्ष्य कभी उनकी स्मृति से ओझल नहीं हुआ।

आचार्य भिक्षु का जीवन संघर्षों की एक लंबी दास्तान है। वे संघर्षों में भी सदा गतिशील रहे। फलस्वरूप अवरोधों की शक्ति मंद होने लगी। साधना की दीप्ति प्रखर होने लगी। वे सतत अप्रमत्तता का जीवन जीते हुए आगे बढ़े। उन्होंने पहले स्वयं सत्य को समझा, स्वयं सत्य को जीया और स्वयं सत्य का अनुभव किया। बाद में दुनिया को सत्य का, आत्मकल्याण का मार्ग दिखाया। उन्होंने जीवन-भर साधना की और अंत में सिद्धयोगी की भांति इच्छामृत्यु का वरण किया।

आचार्य भिक्षु की सत्यनिष्ठा, धृतिबल, साधना और उनका पराक्रमी जीवन वर्तमान युग के लिए एक प्रेरक बोधग्रंथ है। हम उस के हर पृष्ठ और हर पंक्ति के एक-एक अक्षर को आत्मसात करें। उस महायोगी के पदचिह्नों का अनुगमन कर अपनी साधना को सिद्धि के द्वार तक पहुंचाएं। ❖

संदर्भ

1. भिक्षु जश रसायण 10/2
2. वही 1/11, 12
3. श्रद्धा री चौपई 16/51
4. लिखत 1832
5. 181 बोल की हुण्डी
6. भिक्खु दृष्टांत 178
7. वही 107
8. भिक्षु जश रसायण 5/3, 5, 7
9. भिक्खु दृष्टांत 276
10. तेरापंथ का इतिहास प्रथम खंड, पृष्ठ 99 से 104
11. भिक्षु जश रसायण 10/2
12. भिक्खु दृष्टांत 276 ❖❖

श्रद्धा ही हमें तूफानी समुद्रों के पार ले जाती है, श्रद्धा ही पर्वतों को हिला देती है और श्रद्धा ही महासागर को कूदकर पार कर जाती है। यह श्रद्धा और कुछ नहीं, केवल अंतर्यामी प्रभु का सजीव, जाग्रत भान ही है। जिसे यह श्रद्धा प्राप्त हो गई, उसे और कुछ नहीं चाहिए। शरीर से रोगी होकर भी वह आध्यात्मिक दृष्टि से निरोग है; भौतिक दृष्टि से चाहे वह निर्धन हो, पर आध्यात्मिक दृष्टि से वह संपन्न होता है।

—महात्मा गांधी

तनाव का संभावित प्रतिकारक तो हमारे भीतर, हमारे मन में ही है। तनाव से बचने के लिए हमें सहिष्णु होना होगा। अध्यात्म का सीधा संबंध मन-मस्तिष्क से है। नैसर्गिक तौर पर हम पाते हैं कि सहिष्णुता से मन प्रसन्न होता है और आत्मबल मजबूत होता है। जो व्यक्ति सदैव छोटी-छोटी चिंताओं से घिरे रहते हैं, वे निरे स्वार्थी और आत्मकेंद्रित होते हैं। यदि हम स्वयं को एक तरफ रख कर, व्यापक दृष्टिकोण सामने रखते हुए समस्याओं को देखेंगे तो पाएंगे कि आपकी तकलीफ, आपका दुख, आपकी चिंता तो कुछ भी नहीं है।

❑ अध्यात्म : एक निरपेक्ष नीति ❑

❑ दलाई लामा ❑

मेरा मानना है कि आधुनिक विज्ञान और अध्यात्म के बीच गहरा रिश्ता है। संवेदी स्तर पर हर दुख और खुशी का भोगी हमारा शरीर ही बनता है। साथ ही हमारा मस्तिष्क मनोवैज्ञानिक स्तर पर अन्य गतिविधियों को संचालित करता है। खुशी अथवा दुख की जो छाप दिमाग पर पड़ती है, वही प्रभावशाली होती है। कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से अस्वस्थ होते हुए भी मानसिक स्तर पर स्वस्थ-प्रसन्न हो सकता है। दरअसल शांत मन-मस्तिष्क से शारीरिक अशांति अथवा तकलीफ भी शांत हो जाती है।

सफल और सुखद जीवन जीना हरएक का अधिकार है। आज की भौतिकवादी दुनिया विज्ञान और प्रौद्योगिकी की देन है। मनुष्य समाज को दोनों से ही आराम व सुविधा मिलती है। विज्ञान और तकनीक की प्रगति से समस्याओं के समाधान में सहायता मिली है, फिर भी हमें इनके प्रति जागरूक रहना चाहिए। पर, क्या विज्ञान और प्रौद्योगिकी मानसिक शांति दे सकते हैं? क्या हमारे मनोगत दुखों को दूर कर पाएंगे? आधुनिक यांत्रिकता से सब-कुछ पाया जा सकता है, पर विज्ञान ने दुर्भाग्यवश अभी इतनी प्रगति नहीं की है कि वह 'प्रसन्न मन' भी 'बना' पाए। आप अपने तन को चाहे जितना आराम दे दें, आवश्यक नहीं कि इससे आपके मन को, मस्तिष्क को भी आराम मिल सके।

कहा जा सकता है कि विज्ञान जहां दैहिक सुख देता है, वहीं अध्यात्म हमें मानसिक शांति प्रदान करता है। विज्ञान का प्रभाव हमारे जीवन पर दिनोदिन बढ़ता जा रहा है, ऐसी स्थिति में धर्म और अध्यात्म ही ऐसा जरिया है जो हमें मानवता का एहसास कराते हैं। इन दोनों में कोई अंतर्विरोध नहीं है। दोनों एक-दूसरे को महत्त्वपूर्ण अंतःदृष्टि प्रदान करते हैं।

तनाव का संभावित प्रतिकारक तो हमारे भीतर, हमारे मन में ही है। तनाव से बचने के लिए हमें सहिष्णु होना होगा। अध्यात्म का सीधा संबंध मन-मस्तिष्क से है। नैसर्गिक तौर पर हम पाते हैं कि सहिष्णुता से मन प्रसन्न होता है और आत्मबल मजबूत होता है। जो व्यक्ति सदैव छोटी-छोटी चिंताओं से घिरे रहते हैं, वे निरे स्वार्थी और आत्मकेंद्रित होते हैं। यदि हम स्वयं को एक तरफ रख कर, व्यापक दृष्टिकोण सामने रखते हुए समस्याओं को देखेंगे तो पाएंगे कि आपकी तकलीफ, आपका दुख, आपकी चिंता तो कुछ भी नहीं है।

यह युग इक्कीसवीं सदी का युग है। यदि इस सदी में व्यापक विकास होना है, तो समस्याएं भी बहुत-सारी बढ़नी लाजिमी हैं। ऐसी स्थिति में जरूरी हो जाता है कि हम सजग रहें, जागरूक रहें। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम भगवान में विश्वास करते हैं या पुनर्जन्म में, बस, जरूरत इतनी है कि विज्ञान और अध्यात्म में हम समतोल बनाकर रखें। अन्यथा हम भारी तकलीफ में आ जाएंगे।

अतिवादी और वस्तुपरक सोच हमें भौतिक सुख की तरफ तो ले जाएगी, परंतु इससे बौद्धिक विकास नहीं होगा। यदि हम अपने अंतर्मन की आवाज नहीं सुनेंगे या सुनना आवश्यक नहीं समझेंगे तो हम मशीन की तरह हो जाएंगे और हमारी मूल्यवान भावनाएं नष्ट होने लगेंगी। हमें, अपनी संवेदनाओं के प्रति भी सचेत रहना चाहिए, आखिरकार इन्हीं से तो जीवन में सरसता आती है। ध्यान के प्रशिक्षण से नकारात्मक विचार नहीं आते और सकारात्मक भावों को प्रेरणा मिलती है। इस तरह हम स्वयं ही स्वयं के विचारों को नियंत्रित करना सीखने लगते हैं।

आखिर अध्यात्म है क्या? पुराने जमाने में सभी समुदाय एक-दूसरे से अलग-थलग रहते थे। चीनी, भारतीय अथवा अरबी, चाहे कोई भी—सभी ने अपनी-अपनी अवधारणाएं और अपना-अपना दर्शन गढ़ लिया था और सभी यह समझते थे कि वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। परंतु आज, संपूर्ण विश्व एक समुदाय के रूप में बदल गया है, वास्तविकताएं भी बदल गई हैं। हम न तो अपने धार्मिक विश्वास दूसरों पर लाद सकते हैं और ना ही दूसरों की आस्था को ठेस पहुंचा सकते हैं। ऐसा करने से स्थितियां अधिक पेचीदा ही होती हैं।

अध्यात्म के दो चरण हैं, पहला चरण मानवीय संवेदनाओं से संबंध रखता है। यहां तक कि अब तो चिकित्सा विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, मन की प्रसन्नता और सफलता-प्राप्ति में करुणा का बहुत बड़ा हाथ है। धर्म के प्रति आपका विश्वास अध्यात्म के रूप में है। मेरा मानना है कि भगवान की अवधारणा का प्रादुर्भाव प्रेम, सहिष्णुता, करुणा और मानवीयता जैसे गुणों को बल देने के लिए ही हुआ है। प्राचीन भारत में नैतिक मूल्यों के प्रति अपनी आस्था को कर्म के सिद्धांत के द्वारा व्यक्त किया जाता था। इन बातों पर विश्वास करना या नहीं करना, यह पूर्णतः निजी मामला है जो व्यक्ति-विशेष पर निर्भर करता है।

जांच-पड़ताल के बाद जब एक बार हम वास्तविकता को जान जाते हैं, तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। वास्तविकता को जान लेने के बाद, यदि धर्मग्रंथों में उससे भिन्न कुछ लिखा हुआ हो, तो उनमें परिवर्तन करने की स्वतंत्रता हमें होनी चाहिए। मैं बौद्ध हूं। यदि मैं अपनी आस्था से हिलना नहीं चाहता, तो मुझे यह मानना ही चाहिए कि दुनिया चपटी है। यदि कोई धर्म पर टिका हुआ और विज्ञान से परे रहे तो वह एक अवास्तविक विश्व में रह रहा होगा।

अतिनिंदा और अतिरंजना, ये दो चरम स्थितियां हैं। यह व्यक्ति-विशेष पर निर्भर करता है कि वह इन दोनों स्थितियों में वास्तविकता खोज पाता है या नहीं।

इस तरह मूलभूत नैतिक नियमों की बात करने का तात्पर्य यह नहीं है कि मैं धर्मशास्त्र और विज्ञान में विलयन की तरफदारी कर रहा हूं। बल्कि, मैं ऐसी 'निरपेक्ष नीति' की बात कर रहा हूं जिसमें सहनशीलता और सद्भावना जैसे मूल तत्त्व होते हैं, जो धर्म को मानने वालों और नहीं मानने वालों तथा सभी धर्मावलंबियों के बीच बनी दीवार को समाप्त करती है। ❖

मूल अंग्रेजी से अनुवाद

—परिमिता पी. लोढ़ा

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

● आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

संस्कृत में 'मैं' का अर्थ अहंकार और अस्मिता—दोनों रूपों में होता है। अहंकार 'मैं' का गलत बोध है, अस्मिता सम्यक् बोध है—जो हां कहने से आता है। अस्मिता अहंकार-विहीन अहं है। 'मैं' न जुड़ा हो, केवल 'हूं-पन' की अनुभूति अस्मिता है। पतंजलि कहते हैं कि अहंकारविहीन होना मन की शोधित अवस्था है। सब परमात्मा कर रहा है—यह शुद्धता का भाव है। जीसस को सूली पर लटकाया गया। वे एक क्षण को आस्तिकता भूल गए। आकाश की ओर सिर उठा कर कहा कि—यह तू मुझे क्या दिखा रहा है, क्या हो रहा है, मेरे ऊपर? एक क्षण को इंकार आ गया, शिकायत आ गई। लेकिन सम्हल गए। आंखें नीचे झुक गईं, उनमें आंसू भर गए और प्रार्थना की—'हे परमात्मा, मेरी नहीं, तेरी मर्जी पूरी हो, तू जो कर रहा है, ठीक ही कर रहा है।' क्रांति घटी। जो पहले मनुष्य थे, वे दिव्य हो गए। परम-भाव को उपलब्ध हो गए, क्राइस्ट बन गए।

❑ छोड़ सकल अभिमान ❑

❑ चतरसिंह मेहता ❑

ईशावास्योपनिषद् का श्लोक है—**ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्चं जगत्वा जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गुधः कस्यस्विद्धनम्।**। ईशावास्य उपनिषद् की आधारभूत घोषणा है कि सब-कुछ परमात्मा का है। जगत् में जो भी कुछ स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है। यदि ईश्वर का सब-कुछ मान लें तो 'मेरे' को खड़े रहने का स्थान ही नहीं रहता है।

हम मानते हैं—मेरा धन, मेरा पद, मेरी वस्तुएं, मेरा नाम—सब मेरा। मेरे का जोड़ ही फिर 'मैं' बनता है। अहंकार तो स्थान ढूंढ़ता है और वही 'मैं' और 'मेरा' निर्मित करता रहता है। पर, जो बात ऋषि कहते हैं कि सब-कुछ 'परमात्मा' का है, सच तो यही है। व्यक्ति जन्म लेता है, यह उसकी इच्छा या स्वीकृति पर नहीं है। मौत भी पूछ कर नहीं आती। जन्म और मरण हाथ में नहीं हैं, तो बीच का जीवन हाथ में कैसे हो सकता है? श्वास हाथ में नहीं, आए तो आए व रुक जाए तो एक सांस भी नहीं ले सकते। भूख लगती है, नींद आती है, रक्त नाड़ियों में दौड़ रहा है। बचपन आता है, चला जाता है, जवानी आती है, चली जाती है और बुढ़ापा आ जाता है। यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं है। सब परमात्मा के द्वारा आच्छादनीय हैं। पर, आदमी जानकर भी बहुत-सी बातें भुलाए हुए है। यह इसलिए कि यही स्मरण उसके अहंकार की अकड़ को समाप्त कर देगा और अहंकार के बिना वह ना-कुछ हो जाएगा। वह अपनी अकड़ बरकरार रखना चाहता है और मानता है कि कर्ता 'मैं' हूं, सब 'मेरा' है।

आसक्ति की जड़

स्वामी विवेकानन्द ने अहंकार को आसक्ति की जड़ माना है। उनके अनुसार आसक्ति से ही समस्त दुखों की उत्पत्ति होती है। अहं ही दुखों का मूल कारण है। अहंकारी की आकांक्षाएं बहुत बढ़ी हुई होती हैं और जब वे पूरी नहीं होतीं तो दुख होता है, जबकि वह इसका दोष हमेशा दूसरों को देता है। मूलतः उसकी आकांक्षा होती है कि जीवन में सारे लोग उसे देखें। नाम हो, प्रतिष्ठा हो, लोग देख लें। संत दादूदयाल तो कहते हैं कि दुनिया को क्या दिखाना, जो क्षणभंगुर है। यदि कुछ दिखाना ही है तो परमात्मा को दिखाइए, जिससे आनंद की वर्षा हो—**दादू आप छिपाइए जहां न देखे कोय। पिव को देख दिखाइए त्यों-त्यों आनन्द होय।** एंडरसन की प्रसिद्ध कहानी में जैसे सम्मान की आकांक्षा वाले सम्राट ने एक चालबाज से दैवी वस्त्र पहन कर नंगी सवारी निकाली थी, इस भ्रम में कि उसने

देवताओं के वस्त्र पहन रखे हैं, जो सारी जनता देखे। उसी प्रकार अहंकार झूठे वस्त्र हैं। अपने को कितना ही सजाएं, अहंकार में नग्न ही खड़े होते हैं। दूसरे तो अहंकार में सहारा देते हैं, क्योंकि उनकी चाह भी अहंकारी के ही सहारे की होती है। अहंकार के कारण वास्तविकता दिखाई नहीं पड़ती। भ्रम पलता रहता है, आसक्ति बढ़ती है और दुख भी।

दुखों का साधन

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—**आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥** अर्थात् अपने-आप को श्रेष्ठ मानने वाले घमंडी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र-विधि से रहित केवल नाम-मात्र के यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं। वे आगे कहते हैं कि ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारंबार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं। आसुरी योनि का अर्थ है—जहां हमेशा विषाद, दुख, पीड़ा मिलती है। ईश्वर यानी नियम, यानी कर्म-सिद्धान्त—उन्हें दुख में ही ढकेलता है। सचमुच में कोई गिराता नहीं, ढकेलता नहीं। वह ऐसा करता है, इसलिये स्वयं ही गिरता है। मद में, अहंकार में जो भी होता है—वह पाप ही होता है। पाप नरक में ले जाता है—ऐसा कहते हैं। नरक से यह अर्थ नहीं कि कहीं पाताल में कोई छिपा हुआ है, कोई पीड़ागृह है जहां उसको गिरा दिया जाता है—यह तो केवल प्रतीक है। पाप की भावना में जीने वाला व्यक्ति नरक में ही होता है—दुख में, विषाद में, पीड़ा में। महावीर ने कहा है—**माणी विस्सो सव्वस्स होदि कलह-भय-वेर-दुक्खाणि। पावदी माणी पियदं इह-परलोए व अवमाण।।** अर्थात् घमंडी व्यक्ति सबका बैरी हो जाता है। अभिमानी व्यक्ति इस लोक और परलोक में कलह, भय, वैर, दुख और अपमान को अवश्य ही प्राप्त करता है। पर, ये महापुरुषों की बातें जहन में नहीं आतीं। जब धन आता है, पद आता है, प्रतिष्ठा आती है तो आदमी का 'मैं' फूल जाता है। फिर वही आदमी पद पर नहीं रहा तो उसका 'मैं' सिकुड़ जाता है, जैसे गुब्बारे से हवा निकल गई हो। धन चला जाए तो चाल में से प्राण निकल जाता है। शेष रह जाता है—विषाद, दुख, अपमान, जो स्वनिर्मित अहंकार का ही परिणाम होते हैं।

अहंकार एक घाव

व्यक्ति को जब भी दुख हो तो विचार करना चाहिए कि उसका स्रोत कहीं अहंकार में तो नहीं है! किसी ने नमस्कार नहीं किया तो तकलीफ हुई। किसी ने गाली दी तो तकलीफ हुई। कोई देखकर हंसने लगा तो तकलीफ हुई। कोई सम्मान नहीं कर रहा है तो तकलीफ हुई। अहंकार पर चोट लगी। अहंकार एक घाव है। जब घाव नहीं था तो चोट का पता ही नहीं लगता था। अब हर बार चोट का पता लगता रहता है, क्योंकि घाव पर ही लगती है। तकलीफ इसलिये होती है कि 'घाव' तैयार है, अहंकार सधा हुआ है।

दूसरी ओर यह भी हो सकता है जैसा स्वामी राम के साथ हुआ। स्वामी राम अमेरिका गए। लोगों ने बड़ी गालियां दी। निवास पर आकर उन्होंने हंसते हुए कहा—'आज बाजार में बड़ा मजा आया, राम को लोग गालियां देने लगे और हम खड़े होकर हंसने लगे कि अच्छे फंसे राम, और चाहो नाम, उपद्रव होगा।' लोग समझे नहीं कि वे किसको राम कह रहे हैं। उन्होंने कहा—'बात इस 'राम' की। इसको जब गाली पड़ती है तो हम पीछे खड़े होकर हंसते हैं, देखो, अब क्या होता है।' अहंकार का घाव है ही नहीं तो पीड़ा कहां हो? जब तक शरीर से तादात्म्य, तभी तक पीड़ा है।

बुद्ध एक गांव में गए। लोगों ने उन्हें गालियां दीं, वे मौन भाव से सुनते रहे। कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उनका शिष्य आनंद गुस्से से भर गया। बुद्ध ने उससे पूछा—पिछले गांव के लोग थाल में अपने लिए मिठाइयां, फूल लाये थे, हमने क्या किया था? आनंद ने कहा कि स्वीकार नहीं किया था, तो वे वापिस ले गए और गांव में बांट दी। इस गांव के लोग गालियाँ लाए, हमने स्वीकार नहीं की तो वे वापिस अपने गांव वैसे ही ले जाएंगे—बुद्ध ने कहा, हम तो लेते नहीं। जब अहंकार का घाव ही नहीं है तो पीड़ा, दुख, तकलीफ का कोई साधन ही नहीं है। सम्मान की कोई चाह ही नहीं है तो पीड़ा का प्रश्न ही नहीं है। सब दुख अहंकार के घाव से हैं।

स्रोत है भय

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा है—'अहंकार या अंधकार दोनों मिलते-जुलते शब्द हैं। अहंकार से अधिक दुनिया में कोई अंधकार नहीं है। जिस व्यक्ति में अहंकार होता है, वह सदा अंधकार में ही रहता है। उसके लिए कभी सूर्योदय होता ही नहीं। अहंकारी व्यक्ति की आंखें कभी नहीं खुलतीं। देखता कौन है? दीया कभी नहीं देखता। बिजली-बत्ती कभी नहीं देखती। देखती हैं—हमारी आंखें।

जिस व्यक्ति की आंखें ही नहीं खुलती, उसके लिए सूर्योदय हो जाए, चाहे दीया जल जाए—वह देख नहीं पाता। दुनिया में दो तरह के अहंकार सबसे बड़े होते हैं। एक अहंकार है 'मैं' और दूसरा अहंकार है 'मेरा'। 'मैं' सबसे बड़ा अहंकार है। आदमी जानते हुए भी इसे नहीं जानता। इस जगह ये दो आंखें भी बंद हो जाती है।' आंखें बंद अर्थात् अंधकार, और अंधकार भय उत्पन्न करता है। अहंकार भय के कारण भी उत्पन्न होता है। कहीं कोई छिन न जाए, मैं और मेरे को पकड़ रखना है। अहंकार को ही अपना होना समझ लें, अपने को शरीर ही समझ लें तो भय होना स्वाभाविक ही है। यदि अहंकार को अपनी आत्मा न मानें तो फिर भय किस बात का! अभय व्यक्ति ही प्रकाश प्राप्त कर अहंकारशून्य हो सकता है।

अविद्या का लक्षण

उपनिषद में कहा गया है—**आत्मेश्वर जीवोऽनात्मनां देहादीनामात्मत्वेनभिमन्यते। सोऽभिमान आत्मनो बन्धः तन्निवृतिर्मोक्षः।। या तदभिमानं कारयति सा अविद्या। सोऽभिमानो यया निवर्तते सा विद्या।** अर्थात् आत्मा ही ईश्वर व जीवरूप है, फिर भी, जो आत्मा नहीं है, ऐसे शरीर में जीव को अहंभाव हो जाता है, वही जीव का बंधन है। इस अहंभाव का निकल जाना ही मोक्ष है। मोक्ष की परिभाषा आचार्यश्री महाप्रज्ञजी भी करते हैं—'अकेलेपन के अनुभव का नाम मोक्ष है। मेरा अपना कोई नहीं है। जितने पदार्थ हैं, वे वास्तव में मेरे नहीं हैं। इस प्रकार पदार्थ से अपनी पृथकता का, अलगाव का अनुभव करना—इसी का नाम मोक्ष है।' ममत्व का बोध अहंभाव को उत्पन्न करता है और यही अविद्या है। जिससे यह अहंभाव निकल जाता है, वही विद्या कही जा सकती है—सा विद्या या विमुक्तये।

शरीर की सीमा में जो परमात्मा है उसका नाम ही आत्मा है, लेकिन यदि इस आत्मा को यह भ्रम हो जाए कि मैं शरीर हूं, तो इसका नाम जीव है। बात केवल भ्रम की है। भ्रम है—तो जीव, और भ्रम नहीं है—तो ईश्वर। इस भ्रम या अहंभाव को अविद्या निर्मित करती है। आज विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, ईर्ष्या, संघर्ष की दौड़ लगाई जा रही है। अहंकार को जगाने, महत्त्वाकांक्षा को बढ़ाने, दूसरों को पीछे छोड़ने का ही खेल हो रहा है। उपनिषद् के ऋषि की दृष्टि में ये सभी विद्यालय अविद्यालय हैं, अविद्या के केंद्र हैं। विद्या के केंद्र तो वे हैं जहां अहंकार गलाया जाए, आत्मा को जगाया जाए, होश को बढ़ावा मिले, निजता में प्रसन्नता का पाठ पढ़ने को मिले और प्रतिस्पर्धा के स्थान पर स्वगति से आगे बढ़ाने की प्रक्रियाएं हों। ऐसी शिक्षा को ही ऋषि विद्या कहते हैं। अहंकार की शिक्षा तो अविद्या है।

हीनता की ग्रंथि

मनोवैज्ञानिक एडलर का मानना है कि जितना आदमी हीन होता है, उतना ही अहंकारी होता है। जितनी हीन-भावना से ग्रस्त होगा, उतना ही अहंकारी होगा। जिसके पास शक्ति होती है, उसे अहंकार की कोई जरूरत ही नहीं होती। अहंकार भीतर की कमजोरी को छिपाता है। सोचता है, सीधा तो मेरा कोई पता नहीं चलेगा। धन हो जाए, कोई पद हो जाए, बड़ा मकान हो जाए तो पता चल सकता है कि मैं कुछ हूं। निर्बल ही अहंकारी होता है, सबल तो आत्मबल से भरा हुआ होता है।

बुद्ध एक गांव में गये। वहां के सम्राट ने अपने वजीर से पूछा कि क्या मुझे उनके स्वागत के लिये जाना चाहिये? मैं एक सम्राट हूं और वह एक भिक्षु हैं। वजीर ने आव देखा न ताव, कागज उठाया व स्तीफा लिख दिया। सम्राट ने पूछा—स्तीफा किस बात का? वजीर ने कहा—ऐसी जगह अब रुकना संभव नहीं है, क्योंकि अहंकार आत्मा के सामने अपने को श्रेष्ठ समझने लगा है। बुद्ध भिक्षा का पात्र लिये हुए भी भिखारी नहीं हैं और आप सम्राट होते हुए भी भिखारी हैं, इसलिए कि आपके पास कुछ नहीं है। कुछ नहीं इसलिये कि जो भी बाहर-बाहर आपके पास है, वह छीन लिया जाए तो आप ना-कुछ हो जाएंगे। बुद्ध ने सब-कुछ छोड़ दिया है फिर भी वे सब-कुछ हैं। अहंकार तो दीनता को भीतर छुपाए रखने का साधन है। सफलता का नहीं।

असली सफलता आंतरिक

जीसस ने कहा है—धन्य हैं वे लोग, जो संसार में अंतिम खड़े हैं, क्योंकि प्रभु के राज्य में उनके प्रथम होने की संभावना है। जीसस के अंतिम का अर्थ है—जिसे अहंकार का कोई रस नहीं, प्रथम होने की कोई इच्छा नहीं। लाओत्से ने कहा है—मुझे कभी कोई नहीं हरा सका, क्योंकि मैं पहले ही हारा हुआ हूं। मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका, क्योंकि मैंने अपने मान की कभी कोई चेष्टा नहीं की और सभाओं में जहां लोग जूते उतारते हैं, वहां मैं बैठ जाता हूं, ताकि कभी किसी को उठाने का मौका न आए। निरहंकारी तो यही कहता है कि लड़ने का, विजय

का, संघर्ष का, महत्त्वाकांक्षा का पागलपन हमने अच्छी तरह समझ लिया है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह जीवन में सफल नहीं होता। वही सफल होता है, पर उसका रास्ता दूसरा है। लोग बाहर का धन इकट्ठा करते हैं, वह भीतर का धन प्राप्त करता है। लोग बाहर विजय करते हैं, वह भीतर जीत जाता है। लोग बाहर का सामान इकट्ठा करते हैं, वह जीवन को ही पा लेता है। वह विराट से जुड़ जाता है। सिकंदर को किसी ने कहा था कि सारी दुनिया जीत लेगा, तो तुमने सोचा है, फिर क्या करेगा? सिकंदर उदास हो गया। उसने कहा, मुझे यह खयाल ही नहीं आया, लेकिन तुम ऐसी बातें मत करो, मन उदास हो जाता है। सफलता-असफलता की व्यर्थता का बोध निरहंकार ही है। सफलता होती है—वह आंतरिक होती है, आध्यात्मिक होती है, वह आंकी नहीं जा सकती। वह धन, पद, वस्तुओं की सफलता जैसी नहीं होती कि जो सांसारिक दृष्टि से आंकी जा सके। बुद्ध व महावीर की सफलता कैसे आंकेंगे? संसार की सफलता निरहंकारी की सफलता नहीं होती। वास्तव में संसार की सफलता, सफलता ही नहीं है। वह तो मन की अशुद्ध अवस्था ही कही जा सकती है।

मन की अशुद्ध अवस्था

पतंजलि योगसूत्र में कहते हैं—**वितर्कविचारानंदास्मितानुगमात् संप्रज्ञात।** उनके अनुसार संप्रज्ञात समाधि वह समाधि है जो वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता के भाव से युक्त होती है। चेतन मन का एक भाग है—संप्रज्ञात, अर्थात् शुद्ध हुई अवस्था का चित्त, बिलकुल शोधित मक्खन जैसा। जब मन वितर्क, विचार, आनंद व अस्मिता के भाव से युक्त होता है—तभी शुद्ध होता है। तर्क, कुतर्क, वितर्क—ये तीन शब्द हैं। वितर्क का अर्थ है—विधायक तर्क, सकारात्मक तर्क। विधायक तर्क वाला व्यक्ति उन सारे विचारों से दूर रहेगा, जो खुद के नहीं हैं। वह अपनी चेतना का उपयोग करता है और ऐसे विचार व्यक्ति को आनंद की ओर ले जाते हैं। यही आनंद व्यक्ति को 'अन्तस-सत्ता' की अवस्था में ले जाता है। पतंजलि ऐसा इसलिये कह रहे हैं कि नकारात्मक मन अहंकारी होता है, जो अंतस की अशुद्ध अवस्था है। अहंकार हमेशा 'ना' पर पलता है। यदि हां कहें, तो अहंकार पैदा ही नहीं होता। किसी को कोई काम का कह कर देखें, किसी दफ्तर में जाएं, पहला उत्तर 'ना' का मिलेगा। 'ना' ताकत का अनुभव देता है। यदि 'नहीं' भी कहना हो तो उसे सकारात्मक ढंग से भी कहा जा सकता है। गौर से विचार करें तो अधिकांश मौकों पर 'ना' की कोई जरूरत ही नहीं होती। लेकिन, वह एक ही प्रयोजन पूरा करता है—वह है शक्ति का प्रदर्शन, अहंकार का प्रदर्शन। किसी दुख, सुख, हार, जीत—हर घड़ी 'हां' कहने का स्वभाव आ जाए तो कर्ता का भाव तिरोहित हो जाए और परमात्मा की सत्ता स्वीकार हो जाए, हम उसी के उपकरण बन जाएं। यदि अहंकार गिराना है, मन को शुद्ध रखना है तो संपूर्ण अस्तित्व के प्रति 'हां' का भाव चाहिये।

संस्कृत में 'मैं' का अर्थ अहंकार और अस्मिता—दोनों रूपों में होता है। अहंकार 'मैं' का गलत बोध है, अस्मिता सम्यक् बोध है—जो हां कहने से आता है। अस्मिता अहंकारविहीन अहं है। 'मैं' न जुड़ा हो, केवल 'हूं-पन' की अनुभूति अस्मिता है। पतंजलि कहते हैं कि अहंकारविहीन होना मन की शोधित अवस्था है। सब परमात्मा कर रहा है—यह शुद्धता का भाव है। जीसस को सूली पर लटकाया गया। वे एक क्षण को आस्तिकता भूल गए। आकाश की ओर सिर उठा कर कहा कि—यह तू मुझे क्या दिखा रहा है, क्या हो रहा है, मेरे ऊपर? एक क्षण को इंकार आ गया, शिकायत आ गई। लेकिन सम्हल गए। आंखें नीचे झुक गईं, उनमें आंसू भर गए और प्रार्थना की—'हे परमात्मा, मेरी नहीं, तेरी मर्जी पूरी हो, तू जो कर रहा है, ठीक ही कर रहा है।' क्रांति घटी। जो पहले मनुष्य थे, वे दिव्य हो गए। परम-भाव को उपलब्ध हो गए, क्राइस्ट बन गए।

शरणागति—अहंकार का विसर्जन

जीवन को देखने के दो रूप हैं। एक तो जैसे जीवन का केंद्र 'मैं' हूं और बाकी सारा जीवन परिधि पर है। यह अहंकारी का सोचना है कि वही केंद्र में है, बाकी सब परिधि पर। ज्ञानी कहता है कि हम केंद्र पर नहीं हैं, केंद्र में परमात्मा है, जिस पर यह सारा विराट टिका है। हम तो परिधि पर हैं। वह कहता है कि कर्म तो विराट का है और मैं उन कर्मों की लहरों पर तिनके के समान हूं। उसका कोई अहंकार नहीं है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।** अर्जुन, तू सब धर्मों को छोड़कर मुझ एक की शरण में आ। जैन परंपरा कहती है—**अरिहंते सरणं पवज्जामि। सिद्धे सरणं पवज्जामि। साहू सरणं पवज्जामि। केवलिपन्नत्त धम्मं सरणं पवज्जामि।** अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं, सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं।

साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं। केवली प्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञ कथित धर्म को स्वीकार करता हूं। बुद्ध परंपरा में भी सूत्र है—**बुद्धं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।** बुद्ध की शरण जाता हूं, संघ की शरण जाता हूं, धर्म की शरण जाता हूं। जो व्यक्ति अपने को केंद्र में मानता है उसकी बुद्धि शरण में जाने के विरोध में होगी, अहंकार को चोट पहुंचेगी। बुद्धि तो यही कहेगी कि दूसरे सभी मेरी शरण में आएं। शरण की स्वीकृति अहंकार का विसर्जन है, उसकी समाप्ति है, अपने को विराट के साथ एक करना है। शरण में आने की बात इतनी ही है कि मैं अपने को अस्वीकार करता हूं। धर्म का नियम यही है कि जो अपने को अस्वीकार करता है, वही अपने को पाता है। शर्त तो इतनी ही है कि अस्वीकार केवल कंठ से ही नहीं निकले, वह हृदय व प्राण से निकले। ऐसे शरण में जाना, अपना समर्पण करना यानी अहंकार का विसर्जन।

होश है उपाय

अहंकार अंधकार है। अंधकार से लड़ा नहीं जाता, उसे मिटाया नहीं जाता, दीया जलाना होता है। अंधकार तो प्रकाश का अभाव है। प्रकाश की मौजूदगी होते ही अंधकार नहीं पाया जाता। अहंकार आत्मबोध का अभाव है, आत्म-स्मरण का अभाव है। लड़ना नहीं है, अपनी आत्म-ज्योति को जलाना है। भीतर जागरण करना है, ध्यान का दीया जलाना है। भीतर होश को उठाना है। जैसे होश आया—अंधकार नहीं पाया जाता। धीरे-धीरे अंतर्जगत् पूरा का पूरा आलोक से, आभा से मंडित हो जाता है और जहां भीतर आलोक हुआ—अंधकार नहीं पाया जाता। अंधकार नहीं, अर्थात् अहंकार नहीं।

पुरानी कहानी है कि अंधकार ने परमात्मा से प्रार्थना की कि सूरज मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है, मुझे दिन-भर भगाता है। मैंने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा है। परमात्मा ने सूरज को बुलाया। सूरज ने कहा—अंधेरा! मेरी तो कभी उससे मुलाकात नहीं हुई, कभी देखा नहीं। उसे शिकायत हो तो बुलाओ, पहचान तो लूं। अरबों, खरबों वर्ष हो गए, अंधकार सूरज के सामने आया ही नहीं। सूरज होगा तो अंधकार नहीं हो सकता और अंधकार को खड़ा करना है तो सूरज को निमंत्रण नहीं देना होगा। सिर्फ जागकर अहंकार को देखें, तो उधर अहंकार मिलेगा ही नहीं। इधर आंख खुली कि अहंकार समाप्त। कमरे में अंधेरा कितने ही वर्ष पुराना हो, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। दीया जलाते ही अंधकार विसर्जित हो जाता है। वह नहीं कहता कि मैं तो कई वर्षों से हूं, तुम अभी आए हो। अंधकार का कोई बल नहीं होता, वह तो इसलिए होता है कि दीया नहीं है। जैसे ही बोध, ज्ञान, समर्पण, प्रेम, साक्षी, चेतना का दीया जला, अहंकार का अंधकार कितना ही पुराना हो, वह खड़ा भी नहीं रह सकेगा। बिना मिटाए मिट जाता है—अहंकार। बिना लड़े ही जीत हो जाती है। संत कबीर कहते हैं कि बस, ज्ञान का दीया ही काफी है—

काल फिरे सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान।
कहे कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान।। ❖

हिंसा अमानवीय और जीवन तथा चेतना की विरोधी प्रवृत्ति है, इसी से यह स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि मूलतः अहिंसा एक ऐसी मानवीय प्रवृत्ति है जो न केवल मनुष्य को पाशविकता के स्तर से ऊपर उठाती है बल्कि उसे पूरे जीवन के साथ अस्तित्वगत ऐक्य का अनुभव करवाती है। यही भाव अहिंसा का मूल भाव है और चेतना के विकास का मतलब इस मूल भाव का गुणोत्कर्ष होते जाना है। इसलिए अहिंसा कोई निषेधात्मक विचार नहीं बल्कि यह मनुष्य होने की मूल शर्त है। जो लोग यह कहते हैं कि हिंसा मनुष्य के स्वभाव में है वे यह भूल जाते हैं कि मनुष्य अभी भी विकास की प्रक्रिया का एक स्तर है और आगे का विकास हिंसा पर नहीं अहिंसा के भाव पर आधारित है। मनुष्य नाम का जीव जितना अधिक अहिंसक होता जाएगा, उतना ही वह आर्थी संदर्भ में मनुष्य होता जाएगा और उसी में से उसके भावी विकास की दिशा भी खुलेगी। हिंसा विकासशील मनुष्य में छिपे पशु का स्वभाव हो सकती है, पर मनुष्य का मूल स्वभाव नहीं हो सकती। मनुष्य का मूल स्वभाव तो अहिंसा ही रही है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि चेतना के विकास का अर्थ है मनुष्य का निरंतर अहिंसक होते जाना—निषेधात्मक नहीं विधाई अर्थों में। जीवन मात्र के, अस्तित्व मात्र के प्रति लगाव, प्रेम, करुणा, अनुकंपा का भाव और उसका सूक्ष्मतर बोध अहिंसा के भाव की ही गुणाभिव्यक्तियां हैं। अहिंसक होना ही वास्तविक अर्थों में मनुष्य होना और जीवन के विकास की गति में सार्थक भूमिका निभाना है।

—नन्दकिशोर आचार्य

यह कितनी विचित्र नींद थी। आज तक कभी भी नींद ने उसे इतना तरोताजा, इतना नवल और इतना यौवनयुक्त नहीं किया था। संभवतः वह मर चुका था, वह डूब चुका था। अब दूसरे रूप में उसका जन्म हुआ था। नहीं, उसने अपने को पहिचान लिया था, उसे अपने हाथ, अपने पैर, वह स्थान जहां वह लेटा था, उसका अपना हृदयस्थ सिद्धार्थ, आत्मस्थता और व्यष्टि रूप, सभी-कुछ याद आ गए थे। किंतु यह सिद्धार्थ कुछ बदल चुका था, नया हो चुका था। वह आश्चर्यजनक रूप से सोया था और अब वह असाधारण रूप से जाग उठा था, सुख और उत्सुकता से भरा हुआ।

❑ नदी-तट पर ❑

❑ हरमन हैस ❑

कहानी

सिद्धार्थ घूमता हुआ वन-प्रांत की ओर निकल गया, यह स्थान नगर से काफी दूर था। उसे केवल यह चीज मालूम थी कि अब वह लौटकर नहीं जा सकता। पिछले अनेक वर्षों तक उसने जो जीवन व्यतीत किया है, उसका स्मरण करके ही मन में ग्लानि उत्पन्न होती थी। वह गायक पक्षी मर चुका था, उसकी मृत्यु, जिसे उसने स्वप्न में देखा था—वस्तुतः उसके अपने अंतर में निवास करने वाले पक्षी की मृत्यु थी। वह संसार-चक्र में अत्यंत जटिलता के साथ फंस चुका था और उसने चारों ओर से आत्म-ग्लानि और मृत्यु को ही आमंत्रित किया था, ठीक उस स्पंज की तरह, जो तब तक पानी अपने अंदर जज्ब करता जाता है, जब तक जल से परिपूर्ण नहीं हो जाता। उसके अंतर में विराम-वेदना और मृत्यु भर गई थी, और दुनिया में अब ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे उसे आह्लाद और परितोष प्राप्त हो सकता।

वह बड़ी उत्कटतापूर्वक कामना करता था कि किसी प्रकार उसका अतीत विस्मृत हो जाय, वह शांत होना चाहता था, वह निष्प्राण होना चाहता था। काश, अगर बिजली की एक कौंध उसे छू जाती! काश, कोई चीता ही आकर उसे फाड़ डालता! काश, कोई मदिरा या विष ऐसा होता जो उससे उसकी स्मृति छीन लेता, या उसे इतनी गहरी नींद में सुला देता कि जिससे वह कभी न उठ पाता! क्या कोई ऐसी गंदगी थी जिसमें उसने अपने को डुबोया नहीं था, कोई पाप अथवा मूर्खता शेष रह गई थी जिसे उसने किया नहीं था, या उसकी आत्मा पर ऐसा कोई दाग था जिसके लिए वह और केवल वह उत्तरदाई नहीं था? तो क्या अब भी जीवित रहने में कोई सार्थकता है? तो क्या बार-बार श्वास, निःश्वास लेना संभव है, भूख लगना और फिर खाना, फिर से सोना और स्त्रियों के साथ विहार करने की कोई संभावना है? क्या उसके लिए यह सब निःशेष नहीं होगा, कभी भी परिसमाप्त नहीं होगा?

सिद्धार्थ वन में से होकर बहने वाली नदी के तट पर पहुंच गया। यह वही नदी थी जिसके पार नाविक ने उसे उतारा था, जिस समय वह युवक ही था और गौतम के नगर से आ रहा था। वह नदी के पास रुक गया और कुछ झिझकता-सा कगार पर खड़ा हो गया। थकान और भूख से उसका शरीर निःशक्त हो चुका था। अब वह आगे चलकर क्यों जाए, कहां और किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए? अब जीवन में कुछ भी अवशेष नहीं था, दिग्भ्रमयुक्त स्वप्न को समाप्त कर देने, बासी शराब को थूक देने और उस कड़वे और पीड़ायुक्त जीवन को समाप्त कर देने के अतिरिक्त कोई भी आकांक्षा शेष नहीं रह गई थी।

नदी के तट पर एक नारियल का वृक्ष था। सिद्धार्थ उसी का सहारा लेकर खड़ा हो गया। उसने वृक्ष के तने को अपनी बांहों में भर लिया और अपने नीचे बहते हुए पानी में

दृष्टि डाली। उसने देखा और उसका मन हुआ कि अपने को गिर जाने दे और जल की गहराई में अपने को डूब जाने दे। जल की शीत रिक्तता में उसे अपने अंतर की रिक्तता की प्रतिछवि दिखाई देने लगी। हां, वह अब अंतर को प्राप्त हो चुका था। अब इसके अतिरिक्त उसके सम्मुख क्या था कि वह अपनी हस्ती को मिटा दे, अपने जीवन के असफल पंजर को नष्ट कर डाले, उसे दूर फेंक दे ताकि देवतागण उसका उपहास कर सकें। अब वह केवल एक ही कृत्य कर डालना चाहता था कि उस स्वरूप को नष्ट कर डाले जिससे उसे घृणा थी। अच्छा हो, अगर मछलियां उसे हड़प जाएं। यह श्वानवत् सिद्धार्थ, यह उन्मत्त पुरुष, यह कुत्सित और नारकीय देह, यह निस्तेज और कुप्रयुक्त आत्मा! अब उसकी सार्थकता ही क्या? हां, हां मछलियां और मगर उसे निगल क्यों न जाएं और दानव चीर-फाड़कर उसके परखच्चे क्यों न उड़ा दे?

एक विकृत मुखमुद्रा से उसने जल में झांका। उसने अपने मुंह की छाया जल में देखी और उस पर थूक दिया। उसने वृक्ष के तने से अपने हाथ हटा लेने चाहे ताकि वह सिर के बल गिरे और सदैव के लिए नदी के गर्भ में समा जाए। वह झुका—उसके नेत्र बंद थे—मृत्यु की ओर उसने अभियान किया।

उसी समय अपनी आत्मा के किसी दूरस्थ प्रकोष्ठ से अपनी थकी जिंदगी के अतीत में से निकलती हुई एक ध्वनि को उसने सुना। यह केवल एक शब्द, एक पद्यांश था जिसे बिना चिंतना के उसने अस्फुट स्वर से उच्चारित किया, ब्राह्मण-उपासना का वह आदिम और अंतिम शब्द 'ओउम्' था। जिस समय ओउम् स्वर सिद्धार्थ के कानों में पड़ा, उसकी सोई आत्मा अकस्मात जाग उठी और उसने अपने कार्य की जड़ता को पहचाना।

सिद्धार्थ का हृदय सिहर उठा—अच्छा, तो वह यहां तक पहुंच चुका है! वह इतना खो चुका है, इतना दिग्भ्रमित और अज्ञानी हो चुका है कि वह मृत्यु की शरण में परित्राण चाहने लगा है! यह इच्छा, यह शिशु-सदृश अभिलाषा शरीर को नष्ट कर देने के बाद ही शांति की कल्पना करने लगी है! निकट अतीत काल की वह सब परेशानियां, वह निराशा, वह मायूसी भी उसे इतनी पीड़ा नहीं पहुंचा सकी थी जितना कि उस दुष्कृत्य की चेतना ने उसे पहुंचाया जो कि ओउम् के उच्चारण से उसके अंतर में जाग उठी थी।

'ओउम्', उसने अंदर-ही-अंदर उच्चारण किया और ब्रह्म का आविर्भाव होता हुआ प्रतीत हुआ। जीवन की नश्वरता उसके समक्ष प्रकट हो गई, जो-कुछ वह भूल चुका था, उसे याद आ गया था, जो अलौकिक था। उसकी स्मृति मनस्पटल पर अंकित हो चुकी थी।

किंतु यह सब एक निमिष के लिए हुआ, एक झलक के समान। सिद्धार्थ वृक्ष की जड़ में थकान से चूर होकर ढेर हो रहा। अस्फुट स्वर में ओउम् का उच्चारण करते हुए वह वृक्ष की जड़ पर सिर का सहारा देकर गहरी नींद में डूब गया।

उसकी नींद गहरी और स्वप्नरहित थी। बहुत दिन से वह ऐसी नींद नहीं सोया था। कई घंटों के उपरांत जब वह उठा, तो उसे लगा कि जैसे दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। उसने जल का कलकल नाद सुना, उसे यह पता नहीं था कि वह कहां है और कौन उसे वहां लाया? उसने ऊपर देखा और अपने ऊपर वृक्षों और आकाश को देखकर उसे अत्यंत आश्चर्य हुआ। उसे याद आया कि वह कहां है और किस प्रकार वहां आया है। उसके मन में आया कि वह चिरकाल तक वहीं रहे। उसका अतीत उसे आवरण से आच्छन्न प्रतीत हुआ, अत्यन्त प्राचीन और अमहत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। वह केवल इतना जानता था कि उसका पूर्व-जीवन (चेतना प्राप्त करने के प्रथम क्षण में उसका व्यतीत जीवन उसे पिछले जन्म के समान, वर्तमान आत्मा के पूर्वजन्म के समान प्रतीत हुआ) समाप्त हो चुका है और उसके अत्यंत ग्लानियुक्त और कुत्सित होने के कारण वह उसे परिसमाप्त कर ही देना चाहता था। किंतु इस नदी-तट पर आकर उसे आत्मज्ञान हुआ था, इस नारियल-वृक्ष के नीचे और ओउम् शब्द को अपने होंठों पर धारण किए हुए। तब ही उसे नींद आ गई थी और अब वह जागा था तो वह एक नए आदमी की तरह दुनिया को देख रहा था। उसने आहिस्ता से पुनः ओउम् का उच्चारण किया, इसी शब्द का उच्चारण करते हुए वह सोया था और उसकी संपूर्ण प्रसुप्तावस्था जैसे ओउम् की दीर्घ और गंभीर उच्चारण मात्र बन गई थी, ओउम् के चिन्तन में और ओउम् में परिस्नात् और प्रविष्ट हो चुकी थी तथा उस अनाम और अलौकिक का उच्चारण बन चुकी थी।

यह कितनी विचित्र नींद थी। आज तक कभी भी नींद ने उसे इतना तरोताजा, इतना नवल और इतना यौवनयुक्त नहीं किया था। संभवतः वह मर चुका था, वह डूब चुका था। अब दूसरे रूप में उसका जन्म हुआ था। नहीं, उसने

अपने को पहिचान लिया था, उसे अपने हाथ, अपने पैर, वह स्थान जहां वह लेटा था, उसका अपना हृदयस्थ सिद्धार्थ, आत्मस्थता और व्यष्टि रूप, सभी-कुछ याद आ गए थे। किंतु यह सिद्धार्थ कुछ बदल चुका था, नया हो चुका था। वह आश्चर्यजनक रूप से सोया था और अब वह असाधारण रूप से जाग उठा था, सुख और उत्सुकता से भरा हुआ।

सिद्धार्थ उठकर बैठा तो उसे पीले वस्त्र पहने एक भिक्षु अपने पास बैठा दिखाई दिया। उसका सिर घुटा था और वह ठीक सामने विचारक की मुद्रा में बैठा था। उसने उस आदमी को देखा जिसके सिर अथवा दाढ़ी पर एक भी बाल नहीं था और जब उसने पहिचान लिया कि यह भिक्षुक और कोई नहीं, उसका गोविंद ही है, तो उसने उसकी ओर देखना बंद कर दिया। वह उसका बालसाथी गोविंद था जिसने अर्हत बुद्ध की शरण ग्रहण कर ली थी। गोविंद के मुंह पर प्रौढ़ता के चिह्न उभर आए थे किंतु उसके पुराने गुण—जिज्ञासा, स्वामीभक्ति, उत्सुकता और आतुरता अब भी उसके मुंह पर स्पष्ट उल्लिखित थे। किंतु जब गोविंद ने उसकी दृष्टि को अनुभव करते हुए निगाह उठाई और उसकी ओर देखा तो सिद्धार्थ ने जाना कि वह उसे पहचान नहीं सका है। उसे जागा देखकर गोविंद को सुख हुआ। प्रकटतः वह बहुत देर से उसके जागने की प्रतीक्षा करता रहा था, हालांकि वह उसे जानता न था।

'मैं सो रहा था,' सिद्धार्थ ने कहा, 'तुम यहां किस प्रकार आ पहुंचे, भद्र?'

'तुम सो रहे थे,' गोविंद ने उत्तर दिया, 'ऐसे स्थान में—जहां सर्प और वन्य जंतु इधर-उधर डोलते रहते हैं, और जहां सोना अच्छा नहीं है। मैं शाक्यमुनि अर्हत गौतम बुद्ध का एक अनुयाई हूं और कुछ साथियों सहित यात्रा पर जा रहा हूं। मैंने देखा कि तुम इस संकटापन्न स्थान पर सोए पड़े हो, तो मैंने तुम्हें जगाने की चेष्टा की, और जब मैंने देखा कि तुम बहुत गहरी नींद में सोए पड़े हो, तो मैं अपने बंधुओं से पीछे रह गया और तुम्हारी देखभाल करने लगा। लेकिन, लगता यह है कि मैं, जो तुम्हारी देखभाल करने बैठा था, स्वयं ही सो गया था। मुझ पर थकान छा गई थी और मैंने अत्यंत असावधानी से अपना काम संपन्न किया है। अब तुम जाग उठे हो, अब मुझे चलना चाहिए और अपने साथियों का साथ पकड़ लेना चाहिए।'

'मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं श्रमण कि तुमने सुप्तावस्था में मेरी रक्षा की। वस्तुतः अर्हत के अनुयाई बहुत ही दयालु होते हैं, लेकिन अब तुम अपनी यात्रा पर प्रस्थान कर सकते हो।'

'मैं जाता हूं, तुम्हारा मंगल हो।'

'मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं, श्रमण!'

गोविंद ने नमन किया और कहा, 'विदा!'

'विदा! गोविंद!' सिद्धार्थ ने कहा।

साधु चकित-सा खड़ा रह गया।

'क्षमा करें, भद्र, आप मेरा नाम किस तरह जानते हैं?'

यह सुनकर सिद्धार्थ हंस पड़ा।

'मैं तुम्हें तब से जानता हूं गोविंद, जब तुम अपने पिता के घर में थे, जब ब्राह्मण-पाठशाला में पढ़ते थे, जब तुम यज्ञ किया करते थे, श्रमणों के साथ व्यतीत होने वाले अल्पकाल और जैतवन की कुंज में व्यतीत होने वाले उस क्षण से जब तुमने अर्हत बुद्ध के अनुयायी होने का प्रण किया था।'

'तुम सिद्धार्थ हो?' गोविंद उच्च स्वर से चिल्लाया, 'अब मैं तुम्हें पहचानता हूं और मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने तुम्हें पहले ही क्यों न पहचाना! स्वागत है सिद्धार्थ, मैं तुम्हें पुनः देखकर अत्यंत सुखी हुआ हूं।'

'मैं भी पुनः तुम से मिलकर अत्यंत प्रसन्न हुआ हूं। तुमने सोते समय मेरी देखभाल की है। मैं फिर तुम्हारा आभार स्वीकार करता हूं, हालांकि मुझे सुरक्षा की आवश्यकता नहीं थी। तुम कहां जा रहे हो मेरे मित्र?'

'मैं कहीं भी नहीं जा रहा हूं। भिक्षु लोग तो बरसात को छोड़कर हर समय भ्रमण ही करते रहते हैं। हम सदैव एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करते रहते हैं, नियमानुसार जीवनयापन करते हैं, उपदेश देते हैं, भिक्षा ग्रहण करते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं। हमेशा यही क्रम रहता है। लेकिन तुम किधर जा रहे थे सिद्धार्थ?'

सिद्धार्थ ने कहा—'जिन नियमों का तुम पालन करते हो, उन्हीं का मैं पालन करता हूं, मेरे मित्र! मैं कहीं भी नहीं जा रहा हूं। मैं केवल पथिक हूं और तीर्थ-यात्रा पर जा रहा हूं।'

गोविंद ने कहा—'तुम कहते हो कि मैं यात्रा पर जा रहा हूं, मैं तुम्हारा विश्वास करता हूं। किंतु क्षमा करना, सिद्धार्थ! तुम यात्री की तरह दिखाई नहीं पड़ते हो। तुम

अमीरों की तरह वस्त्र पहने हुए हो, तुम फैशन-प्रिय लोगों की तरह जूते पहने हुए हो और तुम्हारे सुगंधित बाल तीर्थ-यात्रियों की तरह के नहीं हैं, ये बाल श्रमणों-जैसे नहीं हैं।'

'तुमने सब-कुछ सम्यक् देख लिया है मित्र! अपनी पारदर्शी आंखों से सब-कुछ देख लिया है। लेकिन मैंने तुमसे यह तो नहीं कहा कि मैं श्रमण हूं। मैंने कहा कि मैं तीर्थ-यात्रा कर रहा हूं, और यह ठीक है।'

'तुम तीर्थ-यात्रा तो कर रहे हो,' गोविंद ने कहा, 'लेकिन ऐसे वस्त्र, ऐसे जूते और ऐसे बाल रखकर बहुत कम लोग तीर्थ-यात्रा करते हैं। मैं वर्षों से भ्रमण कर रहा हूं किंतु ऐसा यात्री मेरी आंखों ने आज तक नहीं देखा।'

'मुझे तुम्हारा विश्वास है गोविंद, लेकिन आज ऐसे जूते और वस्त्र पहनकर जाने वाला आदमी भी तुमने देख लिया। याद रखो मेरे मित्र! यह दृश्यमान् जगत् क्षणिक है, हमारे वस्त्रों और बालों की ये शैलियां भी परिवर्तनशील हैं। हमारे बाल और हमारे शरीर भी परिवर्तनशील हैं। तुमने ठीक ही कहा है। मैं धनिकों के समान वस्त्र पहने हुए हूं। मैं उन्हें पहन रहा हूं क्योंकि मैं एक अमीर आदमी था और मेरे बाल सांसारिक और फैशन-प्रिय आदमियों जैसे हैं क्योंकि मैं उस प्रकार का जीवन व्यतीत कर चुका हूं।'

'और अब तुम क्या हो, सिद्धार्थ?'

'मैं नहीं जानता, जितना थोड़ा तुम जानते हो, बस, उतना ही मैं जानता हूं। मैं तो केवल पथचारी हूं। मैं एक अमीर आदमी था और अब मैं वैसा नहीं हूं और नहीं जानता, कल क्या होगा?'

'क्या तुम अपनी संपत्ति गंवा चुके हो?'

'मैं उसे खो चुका हूं अथवा वह मुझे खो चुकी है, मुझे निश्चय नहीं है। दृश्य जगत् का चक्र बड़ी तेजी से घूमता है, गोविंद! वह सिद्धार्थ आज कहां है, जो ब्राह्मण था, वह सिद्धार्थ कहां है, जो श्रमण था और वह सिद्धार्थ कहां है, जो कभी धनिक था? जो अस्थाई है वह शीघ्र ही परिवर्तित हो जाता है, गोविंद! तुम भली-भांति जानते हो।'

बहुत देर तक गोविंद अपनी युवावस्था के इस मित्र को अविश्वासपूर्वक देखता रहा। फिर उसने झुककर प्रणाम किया, जैसे वह कोई महान् पद से विभूषित व्यक्तित्व हो और अपने पथ पर बढ़ गया। ❖

शेष अगले अंक में

—अनुवाद : महावीर अधिकारी

हमारे लिए स्वाधीनता की सही धारणा होना आवश्यक है। क्या हम इंद्रियों के लिए स्वाधीनता चाहते हैं? क्या हम भोग की अनुमति चाहते हैं? अथवा इंद्रियों से स्वाधीनता चाहते हैं? स्वाधीनता का सही आशय क्या है? क्या मन को भोगों के पीछे दौड़ने देना और इंद्रियों का गुलाम बन जाने देना स्वाधीनता है? इस प्रकार अपनी कब्र स्वयं खोदना क्या स्वाधीनता है? अथवा स्वाधीनता इसमें है कि हम अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण और स्वामित्व प्राप्त कर लें और इस प्रकार इंद्रियों और उनकी लालसाओं से मुक्त हो जाएं? यही वह अवस्था है, जिसे आत्मा की स्वाधीनता को प्राप्त होना कहते हैं।

जब तक हम अपनी दास-प्रवृत्ति से चिपके रहेंगे और इंद्रियों के द्वारा गुलामों की तरह परिचालित होते रहेंगे, तब तक हम प्रगति नहीं कर सकते। इंद्रिय-संयम और पवित्रता का जीवन ही मुक्ति प्रदान करता है। आध्यात्मिक जीवन में भौतिक अथवा मानसिक, किसी भी प्रकार के रोमांस के लिए स्थान नहीं है। यह संघर्ष और परिश्रम का एक कठोर जीवन है। हम मुक्ति और निर्भयता चाहते हैं। हम शरीर और मन की सीमाओं से छुटकारा पाना चाहते हैं, किंतु जब तक हम अपनी इच्छाओं और लालसाओं से चिपके रहेंगे, तब तक यह संभव नहीं है।

साधना की बात तब आती है, जब हम कार्य करने में थोड़ा-बहुत स्वतंत्र होते हैं। तभी वास्तव में आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत होती है। जो आत्मा को भूल जाते हैं, अपनी वास्तविक सत्ता को विस्मृत कर देते हैं, वे मानो आत्मघाती हैं, क्योंकि वे अपने इस व्यवहार से आत्मा को खो बैठते हैं। उपनिषद् में ऐसे ही लोगों के लिए कहा है—'ते च आत्महनो जनाः'। जब तक हमारे मन में दासता की गंध बनी हुई है, जब तक हम गुलाम के समान इंद्रियों के द्वारा परिचालित होते हैं, तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते। इंद्रिय-संयम और शुचिता का जीवन ही हमें मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ाता है। संसारी व्यक्ति चाहे जो कहें, पर आध्यात्मिक प्रगति का अन्य कोई उपाय नहीं है।

—स्वामी यतीश्वरानन्द

तुलसीरमण की कविताएं

•
अनंत दीप

हिमालय पिघल के
उतर आया
सागर से मिलने आतुर

पृथ्वी के वक्ष से
बह रही है गंगा

यह कैसी संध्या है!
घुल रहे जलधार में
आरती के मंत्र
ठहर गया हवा में
अंतस का संगीत

उतर आया
एक उत्सव घाट पर
गंगा से आ लिपटी
आकाश गंगा

पृथ्वी की गोद में
जल की लहरों पर

उर में अग्नि लिए
प्रकंपमान जगत्प्राण में
महाशून्य में प्रकाशमान
अनंत दीप

वह रहा
असंख्य दीपों संग
आत्मीय
निर्विकल्प

अनंत में बढ़ रहा
मेरे हाथों से
अभी-अभी छूटा
अंत दीप

•
समाधि : एक

दब गए धरती के
तमाम रास्ते
पगडंडियां
रुक गए राजमार्ग

झुक गए
देवदार के कंधे
बान के सिर

किसी अंधेरे कोने जाकर
रजाई ओढ़ छिप बैठा
ठिठुरा सूरज

स्तब्ध है
सहमी हवा

बूंद-बूंद जम गई
झालरों में
छत से टपकती जलधार

मंद-सी कांपती
क्षीण काय नदी

मंत्र कीलित
नाले के घराट

दूऽर देश
नदी के संग
उड़ती गई चिड़िया

•
समाधि : दो

अनंत आकाश में
घनी उड़ रहीं
मूक मधुमक्खियां
मस्तिष्क के भीतर
गहरे सन्नाटे में
जैसे घूम आता
ब्रह्मांड

मौन हैं पहाड़
अपने में भर लेने को
फाहा-फाहा स्पर्श

•
समाधि : तीन

प्राणियों की देह-देह
बर्फ के भीतर
सुलग रही आग

हर घर से उठ रहा
निरंतर
धुआं-धुआं जीवन

श्वेत आच्छादन के नीचे
मिट्टी का दीया जलता हुआ

रोशनी में सिर झुकाए
साधना में मौन
मनुष्य
पशु और पेड़ ❖

शीलन

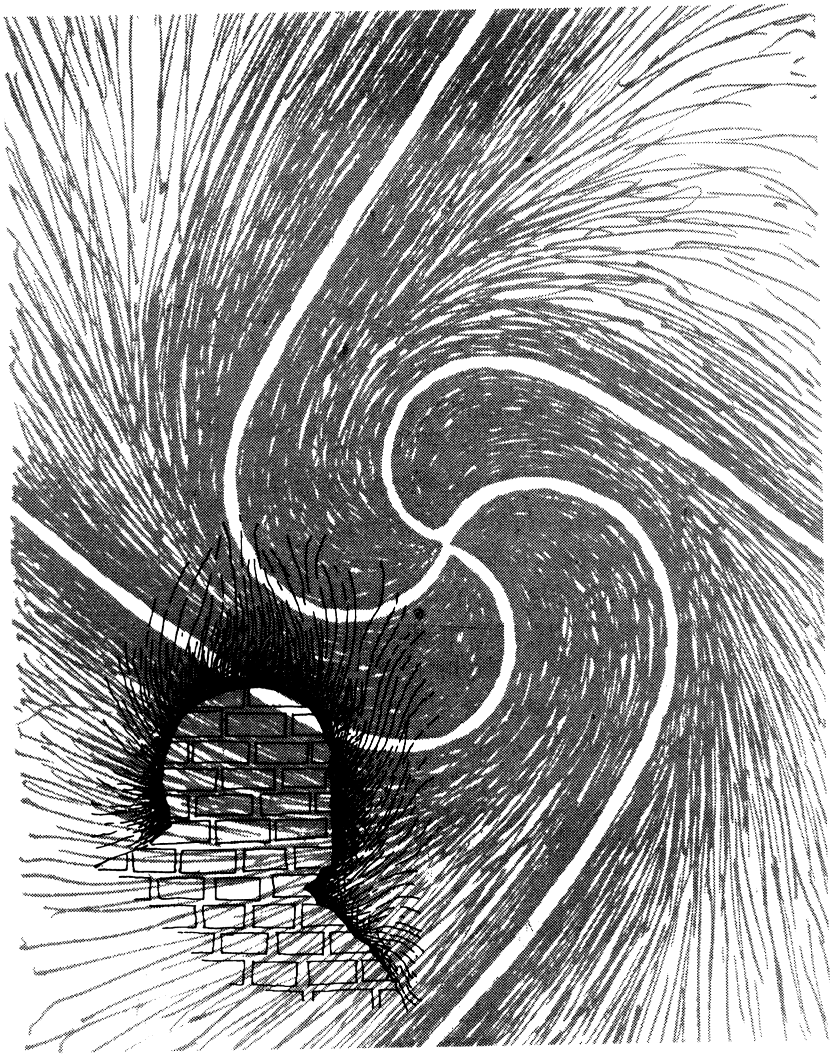

भारतीय संस्कृति पूर्णतः समष्टिवादी रही है। मनुष्य मात्र का मंगल उसका लक्ष्य रहा है। आत्मवाद - सर्वात्मवाद - सर्वचेतनवाद के सिद्धांतों पर हमारे प्राज्ञ मनीषियों ने समस्त विश्व की कल्याण-कामना को 'सर्वतः सुखी भवतु लोकः' की मंगल ध्वनि के साथ मानव-जीवन की उच्चता, मनस्विता, तेजस्विता का पाठ पढ़ाया था—सचराचर जगत को। उनका आदेश था—'शुद्धाः पूता भवन यज्ञि यासः', वे कहते थे—'मभ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा'—भाई भाई से द्वेष न करे, बहिन बहिन से द्वेष न करे। वे सब एक विचार तथा एक कर्म वाले हों और परस्पर कल्याणकारी हों। इसके साथ पिता-पुत्र, पति-पत्नी, माता—सभी प्रेम-पाश में बंधे रहें (अथर्ववेद—3-30-3-4)। पृथ्वी के सारे मानव एक ही परिवार के हैं। उनमें न घृणा हो और न द्वेष की भावना, क्योंकि—'श्रण्वस्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'—सभी तो उस परम सत्ता के ही अमृत पुत्र हैं। धर्म वह है, जो समस्त धर्मों का अविरोधी हो। जो अन्य धर्म में बाधा देता है, वह कुधर्म है, कदाचार है, कुलाचारहीन है—'धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।' 'अविरोधि तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः।'

—**प्रो. कल्याणमल लोढ़ा**

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से रोग के अनेक हेतु बताए जा सकते हैं, वैसे ही आरोग्य के उपायों के विषय में भी वैविध्य होता है। प्राण-चिकित्सा के अनुसार प्राण का असंतुलन रोग का कारण होता है। उसका संतुलन कर आरोग्य उपलब्ध किया जा सकता है। रंग-चिकित्सा-शास्त्र रंग की अप्रशस्तता को तनाव, कुंठा, आलस्य आदि के साथ-साथ अनेक शारीरिक बीमारियों का कारण मानता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने बताया है कि हमारे चैतन्य की रश्मियां जब तेजस शरीर में से होकर निकलती हैं तब उस रश्मि-समूह से एक 'इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फील्ड' का निर्माण होता है। उस आभावलय के रंग, गंध, रस और स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति के भावों की प्रशस्तता और अप्रशस्तता का ज्ञान किया जा सकता है और रोग का निदान भी किया जा सकता है।

आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु

साध्वी श्रुतयशा

विश्व स्वास्थ्य दिवस पर विशेष

जीने की इच्छा हर प्राणी का प्राथमिक अभीष्ट है। जीवन महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए एक स्वर प्रायः अनुगुंजित होता रहा है—**'जीवेमः शरदः शतम्'**, पर महत्त्वपूर्ण यह है कि स्वस्थ जीवन जीया जाए। रुग्ण जीवन कोई जीना नहीं चाहता। रोग से हताश हुआ व्यक्ति मृत्यु की इच्छा करता है। इसीलिए अर्हतों से प्रार्थना की गई—

आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु।

जीवन का महत्त्वपूर्ण सुख है—आरोग्य। जीवन-दर्शन पर विचार करने वाला कोई भी स्वास्थ्य के प्रश्न को कभी गौण नहीं कर सकता।

भगवान महावीर अध्यात्म-पुरुष थे। उनकी दृष्टि आत्मा पर केंद्रित थी। उनके प्रवचनों का मुख्य विषय था—आत्मा और उसकी बंधनमुक्ति। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से अध्यात्म के सूत्र किस प्रकार महत्त्व रखते हैं, इसका एक निदर्शन है—महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने महावीर वाणी को आधार बनाकर 'स्वास्थ्य-दर्शन' की विशद विवेचना की है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने इस विषय में कई ग्रंथों की रचना की है। ये हैं—महावीर का स्वास्थ्य-दर्शन, आमंत्रण आरोग्य को तथा अमृत पिटक। उनकी इन्हीं कृतियों से प्रस्फुटित 'महाप्रज्ञ के स्वास्थ्य-दर्शन' की एक झलक इस आलेख में प्रस्तुत करने का प्रयास है जो स्वस्थ जीवन के लिए एक आधारशिला हो सकती है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के 'स्वास्थ्य-दर्शन' की पहली विशेषता है—'मूलस्पर्शी दृष्टिकोण'। आप **'नामूलं लिख्यते किंचित्'** को विशेष महत्त्व देते हैं। आपने जैन आगमों के साथ-साथ प्राचीन जैन-जैनेतर साहित्य, आयुर्वेद, स्वरशास्त्र, मंत्र-विद्या आदि का सांगोपांग अध्ययन और मनन किया है। आपके स्वास्थ्यशास्त्र में आगमिक संदर्भों का प्राचुर्य है। स्थान-स्थान पर आगम, दर्शन और कर्मवाद के सूक्तों, सिद्धांतों एवं आधार वाक्यों के द्वारा आज के मनुष्य के समक्ष यह मत प्रस्तुत किया है कि स्वास्थ्य का अभिप्राय क्या है? उसके कौन-कौनसे अंग होते हैं? उसका अहम और दोयम आधार क्या है?

स्वास्थ्य-दर्शन का प्रारंभ होता है कार्मण शरीर से। प्राणी का 'इम्युनिटी सिस्टम' जब गड़बड़ाता है तो वह रुग्ण होता है। 'इम्युनिटी' की अस्त-व्यस्तता का हेतु है कर्म शरीर से आने वाले असाता वेदनीय के स्पंदन। वे ही हमारी जीवनी-शक्तियों—आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति,

इंद्रिय-पर्याप्ति आदि को अस्त-व्यस्त करते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने विभिन्न पर्याप्तियों के संवादी केंद्र और उनके आरोग्य के उपाय प्रस्तुत कर आधुनिक स्वास्थ्यशास्त्रियों एवं विचारकों के समक्ष एक नया प्रकल्प प्रस्तुत किया है। आपने नाभि टल जाने का भावार्थ बताते हुए आग्नेय प्राण के संतुलन के नाभि और शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधों की विवेचना की है। साथ ही थॉयराइड ग्रंथि और चयापचय की क्रिया का प्राचीन आधार भी प्रस्तुत किया है। रोग और असाता वेदनीय का पारस्परिक संबंध बताकर आपने कर्मवाद को गतिशीलता प्रदान की है।

तुलनात्मक विवेचना

अकसर देखा गया है कि अध्यात्म दर्शन और धार्मिक दृष्टि से विचार करने वाले विचारक या तो **शरीरं व्याधि मन्दिरं, शरीरं बंधनं, अशुचिस्थानं** आदि मानते हुए चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के प्रश्न को ही गौण कर देते हैं, या फिर रोग को कर्मज मानकर उसके प्रति बाह्य निमित्तों की उपेक्षा कर देते हैं। दूसरी ओर शरीरशास्त्री, चिकित्साविद् आदि विज्ञजन स्वास्थ्य का अधिकांश दायित्व बाह्य परिस्थितियों—विषाणुओं, 'वायरस', मौसम, स्वच्छता, आहारादि की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि को मानते हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने जिस स्वास्थ्य-दर्शन का प्रतिपादन किया है उसमें बाह्य और आंतरिक, सूक्ष्म और स्थूल, उपादान और निमित्त—सभी हेतुओं का सम्यक् आकलन हुआ है। आपके अनुसार—

अन्तर्विशुद्धि तो जन्तोः, शुद्धिः संपद्यते बहिः।
बाह्यं हि कुरुते दोषं, सर्वमन्तरदोषतः।।

हमारी भावनात्मक पवित्रता लेश्या की निर्मलता और चिंतन की विधायकता पर निर्भर है—हमारा 'इम्युनिटी सिस्टम', हमारा रोग प्रतिरोधी तंत्र, दूसरी ओर हमारा भोजन, संभाषण, आचार-व्यवहार आदि सभी हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। यदि एक व्यक्ति सुखी, स्वस्थ एवं प्रसन्न जीवन जीना चाहता है तो उसे संयमपूर्ण आचरण करना ही होगा। यदि एक व्यक्ति संयमी है—आहार, श्वास, इंद्रिय, आसन, भाषा आदि के अतियोग और अयोग से बचता है तो वह स्वस्थ जीवन जी सकेगा।

भावप्रधान दर्शन

शुद्ध आत्म बीमार नहीं होता। निर्जीव शरीर भी रुग्ण या स्वस्थ नहीं होता। स्वास्थ्य का प्रश्न आत्मा और शरीर के संयोग से उपजा प्रश्न है। प्रश्न होता है—बीमारी का प्रारंभ आत्मा से होता है अथवा शरीर से? स्वस्थता का मूल स्रोत क्या है?

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुसार स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले आवश्यक है—चित्त की स्वस्थता। आत्मा का निकटतम सहचर है—सूक्ष्मतम शरीर, कार्मण शरीर। रोग के स्पंदन जब कर्मशरीर से संपृक्त होकर बाहर की ओर निकलते हैं तब अशुभ भावों का निर्माण होता है। अशुभ भाव अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों को अप्रशस्त अथवा असंतुलित करते हैं। ग्रंथिस्रावों और नाड़ी-तंत्र की असंतुलित अवस्था ही स्थूल शरीर में बीमारी के रूप में प्रकट होती है। यदि क्रोध का भाव प्रबल है तो अल्सर, अस्थमा, उच्च रक्तचाप आदि रोग होंगे। यदि कुंठा की प्रबलता है तो माइग्रेन होना आश्चर्य नहीं माना जा सकता। पवित्र भाव जहां व्यक्ति के शरीर में अमृत-तुल्य रसायनों का स्राव करते हैं, वहां अपवित्र भाव उसके शरीर को विषैला बना देते हैं। आधुनिक शरीरशास्त्रियों के समक्ष आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने भावनात्मक स्वास्थ्य का प्रकल्प प्रदान कर एक नई दिशा उद्घाटित की है।

सर्वांगीण दर्शन

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से रोग के अनेक हेतु बताए जा सकते हैं, वैसे ही आरोग्य के उपायों के विषय में भी वैविध्य होता है। प्राण-चिकित्सा के अनुसार प्राण का असंतुलन रोग का कारण होता है। उसका संतुलन कर आरोग्य उपलब्ध किया जा सकता है। रंग-चिकित्सा-शास्त्र रंग की अप्रशस्तता को तनाव, कुंठा, आलस्य आदि के साथ-साथ अनेक शारीरिक बीमारियों का कारण मानता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने बताया है कि हमारे चैतन्य की रश्मियां जब तेजस शरीर में से होकर निकलती हैं तब उस रश्मि-समूह से एक 'इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फील्ड' का निर्माण होता है। उस आभावलय के रंग, गंध, रस और स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति के भावों की प्रशस्तता और अप्रशस्तता का ज्ञान किया जा सकता है और रोग का निदान भी किया जा सकता है। रंग, गंध आदि का परिवर्तन कर चिकित्सा की जा सकती है। प्राचीन-कालीन पुष्प-चिकित्सा, रत्न-चिकित्सा, रस-चिकित्सा, ऊर्जा और विद्युतीय संप्रेषण से की जाने वाली स्पर्श-चिकित्सा, ध्वनि और मंत्र-चिकित्सा आदि के द्वारा आधुनिक रेकी, सूर्यकिरण, फेथहीलिंग आदि

के क्षेत्र में नई क्रांति लाई जा सकती है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में आसन, प्राणायाम, आहार, मुद्रा, मंत्र आदि के समन्वित प्रयोग प्रदान कर एक सर्वांगीण स्वास्थ्य-दर्शन दिया है। आपने बताया है कि स्वस्थ रहने के लिए केवल पोषण ही कार्यकारी नहीं हो सकता, विजातीय तत्त्वों का रेचन भी आवश्यक है। केवल रेचन से ही आरोग्य नहीं मिलता, वीतरागतापूर्ण प्रेक्षा (दर्शन) भी चाहिए।

कहा जा सकता है कि अध्यात्ममनीषी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपनी विलक्षण प्रज्ञा से स्वास्थ्य का एक ऐसा अनुपम दर्शन दिया है जो मनुष्य की आधि, व्याधि और उपाधि को निरस्त कर सकता है। अपेक्षा है कि व्यक्ति उनके प्रवचनों एवं साहित्य के द्वारा आलोक प्राप्त करे। साथ-ही-साथ एक समन्वित अन्वेषण कार्य भी प्रारंभ हो, तथा व्यवस्थित प्रशिक्षण भी हो और जीवन में ये प्रयोग कर समाधि की दिशा में अग्रेसर हों। ❖

अणुव्रत पुरस्कार

वर्ष 2005 के लिए योग्य अभ्यर्थियों अथवा संस्थाओं के नाम के प्रस्ताव आमंत्रित हैं जिन्होंने समाज में मानवीय एकता, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, अणुव्रत के सिद्धांतों की स्थापना एवं स्वस्थ समाज संरचना हेतु सघन रूप से कार्य किया हो।

अणुव्रत पुरस्कार एक गरिमामय सम्मान है जिसके अंतर्गत प्रतिवर्ष किसी व्यक्ति अथवा संस्था को पुरस्कार स्वरूप 1,21,000/- सममूल्य की धनराशि, प्रतीक चिह्न, प्रशस्ति-पत्र एवं शाल-सम्मान प्रदान किया जाता है।

प्रस्ताव की अनुशंसा करते समय निर्धारित फॉर्म का उपयोग करें। आपके प्रस्ताव आवश्यक अनुलग्नकों सहित संस्था के कार्यालय में 31 मई, 2006 तक जमा हो जाने चाहिए। फॉर्म एवं नियमावली संस्था के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

—बनेचंद मालू (प्रबंध न्यासी)

जय तुलसी फाउण्डेशन

अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग

नई दिल्ली 110002

संपर्क सूत्र : 011-23231373 फैक्स : 011-23231363

महासभा के उत्तरोत्तर विकास के लिए नई टीम प्रतिबद्ध रहेगी

श्री राजकरण सिरोहिया अध्यक्ष निर्वाचित

श्री तरुण सेठिया फिर से महामंत्री, प्रकाश बैद कोषाध्यक्ष मनोनीत

❑

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा का 92वां वार्षिक अधिवेशन 3 फरवरी, 2006 (माघ शुक्ला छठ) को मर्यादा महोत्सव के अवसर पर धुरी नगर (पंजाब) में संपन्न हुआ। वार्षिक सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री हुलासचंद गोलछा (काठमांडू, नेपाल) थे। संयोजन श्री भंवरलाल सिंघी ने किया।

इस अवसर पर महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने अपना वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, वहीं आय-व्यय के लेखे भी प्रस्तुत किए गए तथा 91वें वार्षिक अधिवेशन की कार्रवाही की पुष्टि भी हुई।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा का 92वां अधिवेशन धुरी में संपन्न

इस अधिवेशन का मुख्य आकर्षण महासभा के अध्यक्ष, प्रधान ट्रस्टी तथा ट्रस्ट बोर्ड के सदस्यों और बोर्ड ऑफ आरबिट्रेटर के सदस्यों का चुनाव रहा।

महासभा के अध्यक्ष पद पर श्री राजकरण सिरोहिया (मूल सरदारशहर, प्रवास कोलकाता) का सर्वसम्मति से निर्वाचन हुआ, जबकि प्रधान न्यासी के पद पर श्री जसकरण चौपड़ा (मूल गंगाशहर, प्रवास सूरत, गुजरात) का निर्वाचन हुआ। ट्रस्ट बोर्ड के सदस्यों के रूप में सर्वश्री रमेशकुमार हमेरलाल धाकड़ (मुंबई), स्वरूपचंद बरड़िया (दिल्ली), हेमराज शामसुखा (बैंगलोर), स्वरूपचंद दुगड़ (मुंबई), चंपकभाई मेहता (सूरत), बिमल नाहटा (गुवाहाटी) व विनोद बैद (कोलकाता) का निर्वाचन सर्वसम्मति से संपन्न हुआ।

इसी क्रम में बोर्ड ऑफ आरबिट्रेटर के सदस्यों के रूप में सर्वश्री टोडरमल लालानी (दिल्ली), बिमलसिंह सेठिया (कोलकाता), सुमेरमल सुराणा (कोलकाता) का निर्वाचन सर्वसम्मति से हुआ।

इस संपूर्ण चुनाव प्रक्रिया का संचालन श्री धनराज बैद व श्री बेगराज शामसुखा ने संपादित किया। इसी क्रम में नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री राजकरण सिरोहिया ने अपनी कार्यकारिणी की घोषणा 4 फरवरी को मर्यादा महोत्सव के मुख्य कार्यक्रम में की।

श्री तरुण सेठिया को फिर से महामंत्री के पद पर मनोनीत किया गया। इसी तरह श्री प्रकाश बैद (कोलकाता) को फिर से कोषाध्यक्ष के पद पर मनोनीत किया गया। सर्वश्री भीखमचंद (कोलकाता), चैनरूप चिंडालिया (कोलकाता), अनिल दुगड़ (मुंबई), जितेंद्रकुमार नाहटा (कोलकाता) व बजरंगलाल बोथरा (नोयडा) को उपाध्यक्ष के पद पर मनोनीत किया गया। सहमंत्री के पद पर श्री विजयसिंह चौरड़िया (कोलकाता) व श्री हीरालाल मालू (बैंगलोर) की घोषणा की गई।

नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री राजकरण सिरोहिया ने पूज्यवरों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने निवर्तमान अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया के सहयोग की अभिलाषा भी प्रकट की।

श्री सिरोहिया ने टीम भावना से काम करने का संकल्प व्यक्त करते हुए कहा कि जो ऊंचाइयां विगत समय में महासभा को मिली हैं, उनको कायम रखते हुए इसके उत्तरोत्तर विकास के लिए नई टीम प्रतिबद्ध रहेगी। इस अवसर पर निवर्तमान अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने नई टीम को साधुवाद देते हुए विगत चार सालों में मिले अपूर्व सहयोग के लिए सभी के प्रति आभार प्रकट किया।

अपने वार्षिक प्रतिवेदन में महामंत्री श्री तरुण सेठिया

ने महासभा की संगठनात्मक गतिविधियों पर प्रकाश डालते हुए जैन भारती (महासभा का मासिक प्रकाशन) के बारे में संक्षिप्त ब्यौरा दिया। उन्होंने ज्ञानशाला और उपासक प्रवृत्ति के बारे में विस्तार से जानकारी दी, वहीं संबोधन-अलंकरण व पुरस्कार, समाज-भूषण अलंकरण, श्रेष्ठ/विशिष्ट तेरापंथी सभा पुरस्कार तथा सभा प्रोत्साहन परियोजना के बारे में भी पूरी जानकारी दी।

श्री सेठिया ने 'अभ्युदय' (त्रैमासिक प्रकाशन), प्रतिनिधि सम्मेलन, समस्या-समाधान प्रकोष्ठ, भिक्षु ग्रंथागार, समाजभूषण श्रीचंद रामपुरिया स्मृति व्याख्यानमाला 'बोधि', महाप्रज्ञ स्कूल ऑफ फिलासफी एंड रिलिजन का शुभारंभ, आचार्य तुलसी अमृत महाविद्यालय, गंगापुर, आर्थिक सहभागिता एवं सहयोग तथा केंद्रीय सचिवालय आदि प्रवृत्तियों के बारे में भी जानकारी दी।

श्री सेठिया ने बताया कि पिछले नौ दशकों का महासभा का इतिहास मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' व मुनि उदितकुमारजी द्वारा लिखा जा चुका है। इस श्रमसाध्य कार्य के लिए मुनिवरों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए ग्रंथ-प्रकाशन में सहयोगी परिवारों के प्रति भी आभार प्रकट किया। यह ग्रंथ पूज्यवरों को भेंट भी किया गया।

श्री सेठिया ने चित्त-समाधि प्रशिक्षण शिविर, 'फ्यूरेक' के संचालन में सहयोग, महासभा के 'लोगो' के कॉपीराइट के साथ ही साहित्य प्रकाशन के बारे में भी जानकारी दी। उन्होंने महासभा भवन को नया रूप देने, होम्योपैथी दवाखाना के संचालन, अभ्युदय भवन, लाडनूं, साहित्य विक्रय केंद्र, कंप्यूटर प्रशिक्षण, कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर आदि के बारे में भी जानकारी दी।

श्री सेठिया ने महासभा के आर्थिक सुदृढ़ीकरण, छात्रवृत्ति, संविधान संशोधन, ISO 9001 : 2000 प्रमाण-पत्र, जनगणना तथा कार्यकारणी समिति की बैठकों के बारे में भी सदस्यों को अवगत कराया।

महामंत्रीजी ने महासभा के कार्यकलापों में सहयोगी रहे महानुभावों का स्मरण करते हुए सभी का आभार प्रकट किया।

इसी क्रम में कोषाध्यक्ष श्री प्रकाश बैद ने अंकेक्षित लेखे प्रस्तुत किए तथा आगामी वर्ष के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति भी की गई। इस अवसर पर सदस्यों की ओर से आए हुए सुझावों व प्रस्तावों पर भी विचार हुआ। इसी के साथ महासभा का 92वां अधिवेशन संपन्न हो गया।

इससे पूर्व एक फरवरी को सायंकाल संबोधन-अलंकरण प्राप्तकर्ताओं व परिजनों की मिलन गोष्ठी हुई। मिलन गोष्ठी में अलंकरण प्राप्तकर्ताओं का परिचय 'स्क्रीन' पर दिखाया गया। कार्यक्रम का संचालन श्री भंवरलाल सिंघी ने किया।

इसी रोज श्रेष्ठ सभा व विशिष्ट सभा का चयन निर्णायक मंडल सर्वश्री बनेचंद मालू, सुमेरमल सुराणा व श्रीमती शांता पुगलिया ने किया। दिल्ली और सूरत तेरापंथी सभा का श्रेष्ठ सभा के रूप में चयन हुआ। इन्हें संयुक्त रूप से नकद एक लाख रुपए का 'झूमरमल बच्छावत प्रेरणा पुरस्कार' प्रदान किया गया। विशिष्ट सभा के रूप में सिलीगुड़ी की तेरापंथी सभा का चयन किया गया। इस सभा को नकद 31 हजार रुपए का 'बस्तीमल सारीभाई छाजेड़ प्रेरणा पुरस्कार' दिया गया। इन्हें स्मृति चिह्न भी दिए गए।

दो फरवरी को मर्यादा महोत्सव के शुभारंभ पर पूज्यवरों के सान्निध्य में 171 श्रावक-श्राविकाओं को संबोधन-अलंकरण से अलंकृत किया गया। सायंकालीन कार्यक्रम में ज्ञानशाला पुरस्कार 2 फरवरी को युवाचार्यश्री के सान्निध्य में दिया गया। इन सभी कार्यक्रमों का संचालन श्री भंवरलाल सिंघी ने किया। ❖

प्राप्त जानकारियों के आधार पर

—भ.सो.

जो ईश्वर का अनन्य उपासक होता है उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर सर्वत्र, सर्वदा मेरे साथ है। इससे वह बहुत-सी बुराइयों से बच जाता है और संसार के कष्टों को हंसते-खेलते झेलने में समर्थ होता है। वह अपने कर्मों में ईश्वरार्पण-बुद्धि लाकर उनके संस्कारों से अपने को बचा सकता है, क्योंकि वह स्वतंत्र कर्ता न रहकर ईश्वर-चालित निमित्तमात्र हो जाता है।

—सम्पूर्णानन्द

यकायक वज्र के समान घोर गर्जना सुनाई पड़ी। श्रीकृष्ण ने देखा कि एक विशाल वानर, उन पर हमला करने के लिए, तेजी से झपटता हुआ आ रहा है। श्रीकृष्ण के लिए कुछ कहने-सुनने का मौका ही न रहा और उन्हें विवश होकर अपने बचाव के लिए लड़ना पड़ा।

दोनों के बीच घमासान युद्ध होने लगा। वानर रह-रह कर कृष्ण पर झपटता और कृष्ण उसके हर वार को विफल करते जाते। इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा।

❑ अमूल्य मणि ❑

❑ सावित्री ❑

बालकथा

बहुत समय पहिले, भगवान कृष्ण के राज्य में, सत्रजित नाम का एक साधु-आदमी रहता था। वह भगवान सूर्य का अनन्य उपासक था। एक दिन सत्रजित की पूजा से प्रसन्न होकर भगवान सूर्य प्रकट हुए और उन्होंने सत्रजित से वरदान मांगने को कहा। सत्रजित निर्धन आदमी था इसलिए उसने सूर्य से वरदान मांगा कि उसकी निर्धनता दूर हो जाए।

इस पर भगवान सूर्य ने उसे एक अमूल्य मणि दी। उस मणि को स्यमंतक मणि कहते थे। मणि देकर सूर्य ने कहा, 'यदि तुम इसको संभाल कर रखोगे तो तुम्हें इस मणि से हर रोज काफी सोना मिला करेगा।'

स्यमंतक मणि इतनी चमकदार थी कि देखने में एक छोटे-से सूर्य के समान लगती थी। जब सत्रजित उसे घर लाया तो लोग मणि में से सूर्य-सा प्रकाश निकलता देख कर चकित रह गए। उन्होंने सोचा कि सूर्य ही पृथ्वी पर आ गए हैं। उन्हें आशंका हुई कि सूर्य के पृथ्वी पर आने से कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए। वे सलाह लेने के लिए दौड़े-दौड़े भगवान कृष्ण के पास पहुंचे।

श्रीकृष्ण ने लोगों को बताया—वह सूर्य नहीं, बल्कि एक मूल्यवान मणि है, जो सत्रजित को सूर्य से प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा, 'सत्रजित स्वयं मणि लेकर मेरे पास आने वाला है।'

श्रीकृष्ण के यहां आकर सत्रजित ने सूर्य द्वारा दी हुई अद्भुत मणि उन्हें दिखलाई।

मणि देखकर श्रीकृष्ण ने कहा, 'यह एक अद्भुत वरदान है, इस चमकदार मणि से प्रतिदिन सोना भी उत्पन्न हुआ करेगा। कुछ ही दिनों में सारी दुनिया को उस सोने के बारे में पता लग जायेगा। इसलिए तुम जरा चोर-डाकुओं से सावधान रहना।'

उन्होंने आगे कहा, 'इतनी कीमती चीज को अपने पास रखना खतरे से खाली नहीं। क्यों न तुम इसे यहीं रख जाओ। मैं इसकी देखभाल करता रहूंगा और मणि से जो सोना निकलेगा उसे तुम हर रोज आकर ले जाना।'

सत्रजित स्यमंतक मणि को अपने से अलग करना नहीं चाहता था। उसे यह आशंका भी हुई कि कहीं कृष्ण उसकी मणि को हथिया न लें।

'प्रभो', वह बोला, 'मैंने वर्षों तक सूर्य की उपासना करके यह मणि प्राप्त की है। मैं इसे हमेशा अपने पास रखना चाहता हूं। मेरा विचार है कि सूर्य भगवान भी इस मणि को दूसरे के पास देखना पसंद नहीं करेंगे। आप से मेरा निवेदन है कि आप यह मणि मुझसे न मांगें।'

कृष्ण ने कहा, 'मैंने जो तुमसे मणि यहां रखने को कहा, उसका मतलब यह नहीं कि मैं स्वयं ही उसे लेना चाहता हूं। यह तुम्हारी अपनी संपत्ति है, तुम इसे शौक से अपने घर ले जाओ या और जो भी जी चाहे, करो।'

सत्रजित खुशी-खुशी घर वापस आ गया। धीरे-धीरे समय बीतता गया। मणि से हर रोज खूब सोना निकलता था। उस सोने के प्रताप से सत्रजित कुछ ही दिनों में बहुत धनवान हो गया।

सत्रजित का एक भाई था। उसका नाम था प्रसेनजित। प्रसेनजित अच्छे-अच्छे कपड़ों और सुंदर-सुंदर गहनों का बहुत शौकीन था। एक बार वह कई आदमियों के साथ शिकार खेलने जा रहा था। उसका बड़ा मन था कि गले में स्यमंतक मणि पहन कर शिकार खेलने जाए। उसका खयाल था कि मणि पहन कर वह और भी अच्छा दिखाई देगा।

मणि मांगने के लिए वह अपने भाई सत्रजित के पास गया। सत्रजित अपने भाई को इतना प्यार करता था कि 'ना' न कह सका। उसने प्रसेनजित को मणि दे दी।

प्रसेनजित मणि पहन कर शिकार खेलने चल दिया। उस दिन शिकार खेलने में बड़ा ही आनंद आ रहा था। प्रसेनजित एक जंगली सुअर का पीछा करने लगा। पीछा करते-करते वह अपने साथियों से अलग होकर बहुत दूर जा निकला।

यकायक एक भयानक सिंह उसके सामने आ कूदा।

प्रसेनजित को अकेले ही सिंह का सामना करना पड़ा। वह बहादुरी से लड़ा। पर अंत में मारा गया।

सिंह स्यमंतक मणि की चमक से आकर्षित हो गया था। उसने प्रसेनजित के गले से मणि निकाली और लेकर चलता बना।

रास्ते में एक विशालकाय बंदर ने सिंह को जाते देखा। स्यमंतक मणि की चमक से वह भी आकर्षित हो गया। वह बहुत ही ताकतवर बंदर था। उसने सिंह का पीछा किया। दोनों की लड़ाई हुई और उस लड़ाई में सिंह मारा गया।

सिंह से मणि छीनकर बंदर अपने घर चला गया। उसका घर एक विशाल गुफा के अंदर था। घर पहुंचकर बंदर ने वह मणि अपने बच्चों को खेलने के लिए दे दी।

उधर सत्रजित अपने भाई के लौटने का इंतजार कर रहा था। उस दिन जब प्रसेनजित लौट कर नहीं आया तो सत्रजित को बड़ी चिंता होने लगी। जो लोग प्रसेनजित के साथ शिकार पर गए थे वे भी नहीं बता पाए कि वह कहां और कैसे गायब हो गया।

सत्रजित ने दूसरे दिन भी उसका रास्ता देखा, लेकिन उस दिन भी उसके भाई का कोई समाचार नहीं मिला। इस तरह उसने कई दिन तक प्रसेनजित के आने का इंतजार किया, पर वह लौट कर नहीं आया।

तब सत्रजित को संदेह होने लगा कि प्रसेनजित के गायब होने में कहीं श्रीकृष्ण का हाथ न हो। उसे याद आया कि श्रीकृष्ण स्यमंतक मणि अपने पास रखना चाहते थे पर उसी ने मना कर दिया था। उसने सोचा, हो सकता है कि मणि हासिल करने के लिए, कृष्ण ने प्रसेनजित को जान से मार डाला हो।

सत्रजित ने खूब सोचा। वह ज्यों-ज्यों सोचता उसकी शंका और गहरी होती जाती। पर श्रीकृष्ण राजा थे। सत्रजित राजा पर ऐसा आरोप नहीं लगा सकता था।

लेकिन वह अपने मन का भेद ज्यादा दिनों तक छिपा न सका। उसने कुछ मित्रों से अपने मन का संदेह कह दिया। साथ ही यह भी कह दिया कि तुम इसे किसी से कहना मत। मित्रों ने किसी को न बताने का

वादा तो किया, पर अपने-अपने घनिष्ठ मित्रों से यह कह दिया कि कृष्ण ने स्यमंतक मणि छीनने के लिए प्रसेनजित की हत्या कर दी है।

मित्रों के मित्रों ने यही बात अपने और मित्रों से कह दी। इस तरह यह बात फैलती ही गई।

कुछ ही दिनों में सारे देश में इसी की चर्चा होने लगी। लोग खुले-आम कृष्ण पर हत्या का आरोप लगाते।

औरतों में तो सिवाय इसके कोई दूसरी चर्चा ही न होती। वे अपने बच्चों से सावधान रहने के लिए कहती रहतीं।

'अपने गहनों और कीमती चीजों का खयाल रखना,' वे अपने बच्चों को समझातीं, 'वरना मौका मिलते ही कृष्ण महाराज उड़ा ले जाएंगे।'

बात यहां तक आ पहुंची कि श्रीकृष्ण को हमेशा प्यार करने वाले बच्चे भी उनको देखकर डरने लगे।

एक दिन रास्ते में श्रीकृष्ण का कुछ बच्चों से सामना हो गया। कृष्ण को देखते ही बच्चे भागने लगे। मगर श्रीकृष्ण ने उनकी बातें सुन ही लीं।

एक बच्चा चिल्लाकर कह रहा था, 'भागो, भागो, कृष्ण आ रहा है। वह पक्का चोर है। मेरी मां कह रही थी, वह बच्चों के गहने छीनने के लिए उनकी हत्या तक कर सकता है। भागो भाइयो, भागो।'

दूसरे बच्चे बोले, 'हां भैया हां, हमारी मां भी ऐसा ही कह रही थी।'

भोले-भाले बच्चों के मुख से ऐसी बातें सुनकर श्रीकृष्ण को भारी आघात लगा। वे इन झूठी बातों का कारण जानने को बहुत ही उत्सुक हो गए।

भगवान कृष्ण वेश बदल कर लोगों के बीच उठने-बैठने लगे। जल्दी ही उन्हें पता लग गया कि उनके बारे में लोग किस तरह की बातें उड़ा रहे हैं। उन बातों से ऐसा लगता था जैसे हर-किसी को इस बात पर विश्वास हो कि कृष्ण ने ही स्यमंतक मणि हथियाने की नीयत से प्रसेनजित की हत्या की है।

कृष्ण के लिए अपने-आप को निरपराध सिद्ध करना जरूरी हो गया था। इसके लिए स्यमंतक मणि को खोजना और प्रसेनजित की मृत्यु का कारण जानना जरूरी था।

उन्होंने अपने कुछ मित्रों को बुलाया और उनको साथ ले स्यमंतक मणि की खोज में चल दिए।

वे उस वन में पहुंचे जहां प्रसेनजित शिकार खेलने गया था। बहुत खोजने पर उन्हें प्रसेनजित का मृत शरीर पड़ा मिला। परंतु वहां पर स्यमंतक मणि का नामोनिशान भी नहीं था।

वे फिर खोज में जुट गए। कुछ दूर आगे चलने पर उन्हें एक सिंह मरा पड़ा मिला। जहां पर सिंह मरा पड़ा था वहां से एक तरफ को किसी के पैरों के बड़े-बड़े चिह्न जाते हुए दिखाई दे रहे थे।

कृष्ण और उनके साथी उन चिह्नों के सहारे आगे बढ़ते गए। इस प्रकार चलते-चलते वे एक विशाल गुफा के दरवाजे तक जा पहुंचे।

भगवान कृष्ण ने अपने साथियों से कहा कि आप लोग यहीं ठहरें और मेरे लौटने का इंतजार करें। यह कहकर वे अकेले ही गुफा के अंदर घुस गए।

वह एक अद्‌भुत जगह थी। गुफा के अंदर एक बहुत लंबा रास्ता था। उसकी दीवारों पर सुंदर-सुंदर चित्र बने हुए थे। चित्रों को देखकर श्रीकृष्ण चकित रह गए। वे चित्र रामायण की कथा के दृश्य थे। चलते-चलते श्रीकृष्ण ने, चित्रों में, रामायण की पूरी कथा देखी। गुफा के अंदर का वह लंबा रास्ता एक विशाल कमरे में पहुंच कर समाप्त हो गया।

उस बड़े कमरे में कुछ बच्चे खेल रहे थे। उनके हाथ में वही अमूल्य मणि थी जिसकी खोज में श्रीकृष्ण सारे जंगल की खाक छानते आ रहे थे।

श्रीकृष्ण को अंदर आते देख कर बच्चे घबरा गए और लगे जोर-जोर से चीखने-पुकारने।

यकायक वज्र के समान घोर गर्जना सुनाई पड़ी। श्रीकृष्ण ने देखा कि एक विशाल वानर, उन पर हमला करने के लिए, तेजी से झपटता हुआ आ रहा है। श्रीकृष्ण

के लिए कुछ कहने-सुनने का मौका ही न रहा और उन्हें विवश होकर अपने बचाव के लिए लड़ना पड़ा।

दोनों के बीच घमासान युद्ध होने लगा। वानर रह-रह कर कृष्ण पर झपटता और कृष्ण उसके हर वार को विफल करते जाते। इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा।

वह विशाल बंदर रामायण काल का महान योद्धा जामवंत था। वह बूढ़ा था और युद्ध जैसे सांसारिक काम त्याग चुका था। वह अपने नाती-पोतों के साथ उस गुफा में आराम से चैन की जिंदगी बिता रहा था।

आज तक किसी ने भी उस गुफा में आकर उसकी शांति भंग नहीं की थी। लेकिन उस समय एक अजनबी का यकायक भीतर आकर बच्चों को डरा देना उसे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। वह चाहता था कि अजनबी को पीट कर बाहर फेंक दे।

श्रीकृष्ण और जामवंत का युद्ध बड़ा भयानक था। दोनों में कोई भी हारता नजर नहीं आता था। उनकी गरजन से सारा जंगल थरथरा उठा था।

श्रीकृष्ण न तो लड़ाई करने आए थे, न जामवंत की शक्ति आजमाना चाहते थे। मगर हालत कुछ ऐसी हो गई थी कि उन्हें मजबूर होकर लड़ना पड़ रहा था। वे किसी तरह इस लड़ाई को बंद करना चाहते थे। इसलिए मौका मिलते ही, उन्होंने तेजी से आगे झपट कर, जामवंत को जोर से पकड़ा और अपने हाथों से उठा कर, झटके से दूर फेंक दिया।

अपनी इस अचानक हार से जामवंत भौंचक खड़ा रह गया। उसे आज तक कोई भी नहीं हरा सका था। उसने अपने हराने वाले की ओर गौर से देखा। श्रीकृष्ण के रूप में उसे भगवान विष्णु का विराट रूप दिखाई पड़ा और उसी रूप में जामवंत ने अपने पहले स्वामी, श्रीराम, की मूर्ति भी देखी।

अब जामवंत को अपने ही स्वामी राम से युद्ध करने का बहुत दुख हुआ। वह श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा। श्रीकृष्ण ने उसे गले लगाकर कहा, 'यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें एक-दूसरे से युद्ध करना पड़ा। मुझे तुमसे मिल कर और यह देख कर बड़ी खुशी हुई कि तुम आज भी उतने ही ताकतवर हो।'

यह सुनकर जामवंत आनंद के आंसू बहाने लगा।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने जामवंत को जंगल में आने का कारण और गुफा तक पहुंचने की कहानी सुनाई।

जामवंत ने कहा, 'प्रभो, आप जिस अमूल्य मणि की खोज में हैं वह यहीं है। यह मणि एक सिंह के पास थी। मैंने सिंह से छीन कर बच्चों को खेलने के लिए दे दी थी।

जामवंत ने अंदर से मणि लाकर कृष्ण को दे दी।

उस समय गुफा में खुशी की लहर जैसी दौड़ गई थी। जामवंत के पीछे-पीछे उसके बच्चे भी, कृष्ण से आशीर्वाद लेने, बाहर आ गए थे।

कुछ समय बाद श्रीकृष्ण ने जामवंत और उसके बच्चों से विदा ली और अपने साथियों के संग सीधे सत्रजित से मिलने चल दिए।

स्यमंतक मणि दुबारा हासिल होने पर सत्रजित की खुशी का ठिकाना न रहा।

वह श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा और अपने बुरे विचारों तथा गंदी बातों के लिए क्षमा मांगने लगा और स्यमंतक मणि भी कृष्ण को ही भेंट में देने लगा।

लेकिन कृष्ण उसे लेना नहीं चाहते थे। उन्हें तो इस बात की खुशी थी कि उन पर लगा आरोप झूठा सिद्ध हो गया और उन्हें, एक बार फिर, आबाल-वृद्ध सभी का विश्वास प्राप्त हो गया। ❖

किस आस्तिक की श्रद्धा दूसरों को 'भोली' (या 'अंधी' भी) नहीं जान पड़ती—जब तक कि वे स्वयं आस्तिक न हों? जब श्रद्धा के स्वभाव में ही है कि वह तर्कातीत हो (और परिवेश-निर्भर तो वह कदापि नहीं हो सकती), तब उसके तर्क-संगत होने का प्रश्न कहां उठता है, और परिवेश की कसौटी पर उसे परखना चाहना कहां की बुद्धिमानी है?

—अज्ञेय

यह महोत्सव अनुशासन, संयम और मर्यादा के प्रति जागरूकता व निष्ठा की प्रेरणा का उत्सव बने

चित्त-समाधि के लिए परस्परता, सेवा और सहयोग उत्तम आलंबन

चिंतन की वैज्ञानिक दृष्टि व अनुशासन को युग के सांचे में ढालने का अभिक्रम बने

❑

धुरी में 142वां मर्यादा महोत्सव
धुरी बना धर्मपुरी

तेरापंथ संघ का 142वां मर्यादा महोत्सव इस बार धुरी (पंजाब) में संपन्न हुआ। बसंत पंचमी, 2 फरवरी, 2006 से शुरू होने वाला यह तीन दिन का महोत्सव माघ शुक्ला सप्तमी (4 फरवरी, 2006) को संपन्न हुआ। तेरापंथ धर्मसंघ के अधिष्ठाता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 'मर्यादा पत्र' को प्रतिष्ठापित कर इस महोत्सव का शुभारंभ किया। बसंत पंचमी के पावन दिवस पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने इस विश्वास को दोहराया कि हमारा संघ मर्यादा, अनुशासन और व्यवस्था में संपूर्ण भरोसा रखता है। उन्होंने आशा प्रकट की कि इन्हीं आधारों पर धर्मसंघ सदा विकास की दिशा में गतिशील रहेगा। आचार्यप्रवर ने आह्वान किया कि हम संकल्प करें कि हमारे जीवन में 'अनुशासन' और 'मर्यादा' सदा-सदा बनी रहेगी।

अपने मंगल उद्‌बोधन में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने सेवा को परम धर्म बताते हुए सामुदायिक जीवन में उसकी महत्ता को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि चित्त-समाधि के लिए परस्परता, सेवा और सहयोग उत्तम आलंबन बन सकते हैं।

इस अवसर पर उन्होंने तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु का पावन स्मरण भी किया और उनके बताए सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए कहा कि जिन मर्यादाओं का निर्माण आचार्यश्री भिक्षु ने संघ की सुव्यवस्था के लिए किया है, हम उनके प्रति निरंतर जागरूक रहकर विकास की दिशा में आगे बढ़ते रह सकते हैं।

मर्यादा महोत्सव के इस पहले दिन का आकर्षण सेवा-केंद्रों पर 'सिंघाड़ों' की नियुक्ति का होता है। संत वर्ग की ओर से मुनि जयकुमारजी तथा साध्वी समाज की ओर से साध्वी यशोधराजी ने सेवा-केंद्रों पर नियुक्ति के लिए आचार्यवर से प्रार्थना की। इसी क्रम में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लाडनूं सेवा-केंद्र पर साध्वी फूलकुमारीजी व साध्वी शुभवतीजी को, बीदासर समाधि केंद्र पर साध्वी मोहनकुमारीजी (राजलदेसर) व साध्वी संयमश्रीजी को, डूंगरगढ़ सेवा-केंद्र पर साध्वी यशोधराजी व साध्वी पीयूषप्रभाजी को, गंगाशहर सेवा-केंद्र पर साध्वी कंचनकुमारीजी (लाडनूं) व साध्वी कलाश्रीजी के सिंघाड़ों की घोषणा की। इसी तरह साध्वी त्रिशलाकुमारीजी के 'सिंघाड़े' को राजलदेसर सेवा-केंद्र पर, मुनि प्रशांतकुमारजी को छापर सेवा-केंद्र पर, मुनि जंबुकुमारजी को चाड़वास सेवा-केंद्र पर और मुनि किशनलालजी को जैन विश्व भारती, लाडनूं सेवा-केंद्र पर सेवाकार्य संभालने के निर्देश दिए।

इसी मौके पर सभी साधु-साध्वियों व समणियों ने दीक्षा-क्रम से पंक्तिबद्ध होकर मुनि मुदितकुमारजी, मुनि महावीरकुमारजी, मुनि आकाशकुमारजी और मुनि नयकुमारजी के साथ लेखपत्र को सस्वर उच्चारित किया। पहले रोज के कार्यक्रम का संचालन मुनि मोहजीतकुमारजी ने किया।

जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने संबोधन-अलंकरण परिचय पुस्तिका आचार्यवर को भेंट की। महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने 'जैन भारती' का नया अंक पूज्यवरों को उपहृत किया, वहीं श्री सुरेंद्र बोरड़ ने 'अभ्युदय' का नया अंक भेंट किया। मित्र परिषद की ओर से प्रकाशित 'जय तिथि दर्पण' श्री प्रमोद

नाहटा ने व 'जय तिथि पत्रक' श्री रघुवीरसिंह थानेदार ने भेंट किए।

'भिवानी चातुर्मास आमंत्रण पत्रिका' श्री सुरेंद्र जैन एडवोकेट ने भेंट की। इसी अवसर पर जयपुर के श्री पन्नालाल बैद ने 'महाप्रज्ञ इंटरनेशनल पब्लिक स्कूल' और 'आचार्य महाप्रज्ञ इंस्टीट्यूट' के बारे में जानकारी दी।

आचार्यवर की ओर से समय-समय पर घोषित संबोधन-अलंकरण हर साल इसी मौके पर महासभा की ओर से प्रदान किए जाते हैं। इस बार 171 श्रावक-श्राविकाओं को संबोधन-अलंकरण घोषित किए गए। पूज्यवरों के सान्निध्य में ये अलंकरण इस समारोह में प्रदान किए गए। इस कार्यक्रम का संचालन श्री भंवरलाल सिंघी ने किया।

दूसरा दिन; पदाभिषेक दिवस

मर्यादा महोत्सव का दूसरा दिन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के पदाभिषेक दिवस के रूप में मनाया जाता है। सूर्य की प्रथम रश्मियों के साथ ही इस दिवस का उल्लास चारों ओर विकिरण हो जाता है।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी जहां साधु वर्ग के साथ आचार्यवर के मंगल पदाभिषेक पर अपनी मंगल भावना लेकर उपस्थित होते हैं, वहीं साध्वी समाज के साथ साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी भी सूर्योदय के साथ ही श्रद्धा और उल्लास के साथ आ उपस्थित होती हैं। श्रावक-श्राविका समाज भी समुपस्थित होकर उल्लासभरे माहौल को द्विगुणित कर डालते हैं।

पदाभिषेक समारोह के औपचारिक शुभारंभ की शुरुआत साध्वीश्री विश्रुतविभाजी के उस पत्रवाचन से होती है जो चाड़वास मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आचार्यश्री तुलसी द्वारा लेखबद्ध किया गया था। महासभा अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया यही पत्र आचार्यवर के करकमलों में उपहृत करते हैं।

इससे पहले कार्यक्रम का शुभारंभ युवाचार्यश्री महाश्रमणजी के महामंत्रोच्चार से होता है। धुरी कन्या मंडल के मंगलगीत और प्रवास व्यवस्था समिति के महामंत्री श्री मुरलीधर शर्मा के स्वागत के साथ ही आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की अभ्यर्थना में श्रद्धाभरे उद्‌गार उद्घाटित होने शुरू हो जाते हैं। समणी शशिप्रज्ञाजी अपने विचार अंग्रेजी भाषा में रखती हैं, वहीं साध्वी सरस्वतीजी और विनयश्रीजी आदि साध्वियां सुमधुर गीत के माध्यम से अपनी भावनाएं प्रकट करती हैं। समणीवृंद की ओर से सामूहिक गीत प्रस्तुत किया जाता है, तो मुनि नयकुमारजी, मुनि मुदितकुमारजी साध्वी मल्लिकाश्रीजी, साध्वी तरुणयशाजी अपनी काव्य प्रस्तुतियों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति प्रकट करती हैं। साध्वी ऋजुयशाजी और मुमुक्षु मीना भी अपने विचार प्रकट करती हैं। अणुव्रत प्रभारी मुनि सुखलालजी अपने श्रद्धा भाव प्रकट करते हुए अहिंसा प्रशिक्षण के संबंध में जानकारी देते हैं। साध्वी शुभ्रयशाजी आदि साध्वियों की ओर से सुमधुर गीत प्रस्तुत किया जाता है, वहीं कुमारी पूजा बोथरा भी अपना गीत पेश करती है। साध्वी मुदितयशाजी की कविता, मुनि महावीरकुमारजी के गीत के साथ ही साधु-समाज की ओर से पंजाबी भाषा में जो गीत प्रस्तुत किया जाता है तो उससे समूचा माहौल श्रद्धामय हो उठता है।

इसी अवसर पर साध्वी विमलप्रज्ञाजी अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ आचार्यप्रवर के प्रवचनों के दो संकलन—'महाप्रज्ञ ने कहा—3' व 'महाप्रज्ञ ने कहा—4' आचार्यवर को भेंट करती हैं। समणी मलयप्रज्ञाजी ने 'मंत्र एक समाधान' पुस्तक को सूक्ष्म अक्षरों में चित्रांकित कर आचार्यवर को भेंट की।

इसी क्रम में साध्वी चंदनबालाजी आदि साध्वियों की ओर से पंजाबी गीत व मुनि जंबुकुमारजी की ओर से सुमधुर गीत पेश हुआ। जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया, युवक परिषद के अध्यक्ष श्री रतन दुगड़, महिला मंडल की अध्यक्षा श्रीमती सायर बैंगानी और पंजाब प्रांतीय सभा की ओर से श्री रतनलाल जैन ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। श्रीमती लक्ष्मी मित्तल, श्री भीखमचंद नखत, भिवानी चातुर्मास व्यवस्था समिति के श्री सुरेंद्रकुमार जैन ने भी अपने विचार प्रकट किए।

इसी अवसर पर श्री भंवरलाल सिंघी ने महासभा के इतिहास ग्रंथ-लेखन के बारे में जानकारी दी। इसका आलेखन मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने किया है। ग्रंथ की पहली प्रति महासभा अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने पूज्यवरों को भेंट की। आचार्यवर द्वारा रचित कृति 'एकांत में अनेकांत' बालमुनि आकाशकुमारजी ने आचार्यवर को भेंट की। इसका संपादन साध्वी विश्रुतविभाजी ने किया है।

इस अवसर पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने अपनी भावनाएं प्रकट करते हुए कहा कि आचार्यश्री

महाप्रज्ञजी की विलक्षणताओं का एकमात्र रहस्य यही है कि वे अपने गुरु और निर्माता के प्रति गहरा आंतरिक समर्पण रखते हैं। इसी से आपकी विलक्षणताएं स्वतः प्रकट होती जाती हैं। उन्होंने कहा कि हम आज 'विलक्षण-समवाय' के रूप में आपका अभिनंदन कर रहे हैं।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने इस अवसर पर अपने श्रद्धाभाव प्रकट करते हुए स्मरण कराया कि तेरापंथ की परंपराओं में आचार्य का स्थान सर्वोपरि होता है। इस पद पर आरूढ़ हुए आचार्यवर को ग्यारह वर्ष पूरे हो रहे हैं और आप बारहवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस अवधि में संघ को जो ऊंचाइयां मिली हैं और जनकल्याण के जो काम हुए हैं वे उल्लेखनीय हैं। साध्वीप्रमुखाजी की ओर से आचार्यवर को उपहृत किए गए रजोहरण की ओर इंगित करते हुए युवाचार्यश्रीजी ने संकेत किया कि इसकी फलियां तो कोमल होती हैं, पर डंडी कठोर होती है। आचार्यों का अनुशासन रजोहरण की तरह ही कठोरता और कोमलता का संगम कहा जा सकता है।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने कामना की कि हम आपकी मनमोहक प्रसन्नमुद्रा को इसी तरह निहारते रहें और यह पदाभिषेक दिवस मनाते रहें—यही अभीप्सा है। उन्होंने अपना सौभाग्य माना कि आचार्यवर आज पूर्ण स्वस्थता और सक्रियता से संपूर्ण कार्यों का संचालन कर रहे हैं।

आचार्यश्री के विशेष संकेत पर युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने जयाचार्यश्रीजी की ओर से मर्यादाओं के नए सूत्रपात का उल्लेख किया। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी की ओर से व्यवस्थाओं के नवीनीकरण पर चले चिंतन पर भी रोशनी डाली और साधु-साध्वियों तथा समण श्रेणी की नियम पुस्तिकाओं के बारे में जानकारी दी। इन पुस्तिकाओं में अनुशासन सूत्र, व्यवस्था सूत्र और चर्चा सूत्र—इस तरह तीन विभाग निर्धारित किए गए हैं। इसी के साथ युवाचार्यश्री ने इन पुस्तिकाओं के सूत्र पढ़कर भी सुनाए। आचार्यवर की आज्ञा को शिरोधार्य कर ठीक समय—1.58 मिनट पर इन नवीन नियम पुस्तिकाओं को संघ में लागू करने की घोषणा की।

इस अवसर पर अपने मंगल प्रवचन में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने गणाधिपति तुलसी का पावन स्मरण करते हुए माना कि मेरे लिए आज का यह दिन अपने कर्तव्य और दायित्व का बोध कराने वाला दिवस है। मैं यह बताना चाहता हूं कि पूज्य गुरुदेव ने संघीय दायित्वों के साथ मुझे जोड़ तो बहुत पहले ही लिया था, पर सबके सामने बात बाद में आई। आज यह धर्मसंघ जितना व्यापक रूप लिए खड़ा है और पूरे राष्ट्र को अपनी मेधा और ऊर्जा से प्रभावित कर रहा है, यह एक विरल उदाहरण है। ऐसे धर्मसंघ बहुत कम मिलेंगे जो पूरे राष्ट्र में व्याप्त हों। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान आदि ने इस संघ को व्यापक रूप दिया है। इसके फलने-फूलने का सबसे बड़ा आधार एकल नेतृत्व है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने शिक्षा के क्षेत्र में धर्मसंघ के विकास का खुले मन से जिक्र करते हुए स्पष्ट किया कि हमारी पहली आवश्यकता साधुत्व के प्रति अपनी आस्था को परिपुष्ट बनाना है। एक आचार्य का प्रमुख कर्तव्य भी यही है कि संयम के संस्कारों को पुष्ट बनाया जाए। हमारे जीवन में कभी सुविधावाद न पनपे और संघ के निरंतर विकास के प्रति सभी जागरूक रहें—यह सबका दायित्व है। आचार्यवर ने कहा कि संघ के आचार्य के साथ ही युवाचार्य, साध्वीप्रमुखा और मुख्य नियोजिका के साथ-साथ शासन गौरव के रूप में प्रतिष्ठित साधु-साध्वियों का दायित्व भी है कि वे संघ के विकास के प्रति निरंतर जागरूक रहें। अपने आह्लादभरे स्वरों में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने माना कि मेरे दाएं-बाएं युवाचार्य और साध्वी-प्रमुखा हैं, ऐसा योग मिलना मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। उन्होंने संकेत किया कि अभी महाश्रमण की जगह किसी की नियुक्ति नहीं हुई है, लेकिन मुख्य नियोजिका की नियुक्ति कर दी गई है। उन्होंने चाहा कि अग्रणी साधु-साध्वियां स्वयं के प्रति और अपने सहवर्तियों के प्रति सतत जागरूक रहें।

अपने श्रद्धाभरे स्वर में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने आचार्यश्री तुलसी का पुनः स्मरण किया और अपना सौभाग्य माना कि उनके साथ मुझे अद्वैत बनकर जीने का अवसर मिला।

आचार्यश्री ने समण श्रेणी में नियोजिका की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए घोषणा की कि अब से उसकी अवधि सामान्यतया पांच वर्ष की होगी। समण श्रेणी के लिए पांच सदस्यीय 'प्रज्ञा परिषद' की व्यवस्था की गई है। समण श्रेणी के विकास और व्यवस्था के चिंतन आदि का दायित्व 'प्रज्ञा परिषद' पर रहेगा।

आज ही के दिन साधु-साध्वियों के चातुर्मासों की घोषणा की उत्सुकता से प्रतीक्षा रहती है। पहले चरण में

कोई 49 साधु-साध्वियों के चातुर्मास तथा समणीवृंद के 18 प्रवासों की घोषणा की गई।

भारत से बाहर ह्युस्टन, लंदन और ऑरलेंडो में समणी प्रवास की घोषणा भी हुई। इसी अवसर पर कोई 35 श्रावक-श्राविकाओं को संबोधन-अलंकरण की घोषणा भी की गई।

माघ महोत्सव : मुख्य कार्यक्रम; तीसरा दिन

माघ शुक्ला सप्तमी, शनिवार। पंजाब का धुरी नगर और 142वां मर्यादा महोत्सव—विशाल जनमेदिनी के बीच महामंत्रोच्चार के साथ 'मर्यादा समवसरण' में माघ महोत्सव का शुभारंभ हुआ। जिस 'मर्यादा पत्र' को अपनी आधार भित्ति मानते हुए तेरापंथ धर्मसंघ निरंतर विकास के सोपान तय कर रहा है, उसी 'मर्यादा पत्र' का श्रद्धापूर्वक स्मरण करना और उसे सस्वर उच्चरित करना इस महोत्सव का मुख्य आकर्षण होता है।

'मर्यादा पत्र' की पुनर्प्रतिष्ठा के साथ ही मुनि दिनेशकुमारजी ने मर्यादा घोष का निनाद किया और साथ ही मर्यादा गीत का सस्वर संगान हुआ। कार्यक्रम की इस शुभ शुरुआत के साथ ही महिला मंडल, धुरी के स्वागत गीत और व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री रघुवीरसिंह थानेदार के स्वागत भाषण के साथ महोत्सव कार्यक्रम क्रमशः आगे बढ़ना शुरू हुआ। मुमुक्षु बहनों के गीत, साध्वी पावनप्रज्ञाजी व समणी सत्यप्रज्ञाजी के गीत के बाद साध्वी अमितप्रभाजी ने अपने विचार प्रस्तुत किए। संतों, साध्वीगण और समणीवृंद की ओर से प्रस्तुत समूह गीतों ने पूरे माहौल को श्रद्धा और उल्लास से सराबोर कर डाला। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने करुणाभाव और कृपादृष्टि से गीत का संगान करने वाले संतों को 21-21 तथा गीत की रचना करने वाले मुनि दिनेशकुमारजी को 51 कल्याणक पुरस्कारस्वरूप प्रदान किए।

साध्वी कल्पलताजी ने इस मौके पर चाड़वास मर्यादा महोत्सव के समय पूज्य गुरुदेव तुलसी की ओर से प्रदत्त संदेश जब पढ़कर सुनाया तो उस समय का माहौल चित्र-लिखित-सा हो उठा। इसी बीच पंजाब प्रांतीय तेरापंथी सभा के अध्यक्ष श्री बंशीलाल सुराणा ने यह मर्यादा महोत्सव पंजाब को सुलभ कराने के लिए पूज्यवरों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

माघ महोत्सव के इस मुख्य समारोह में तेरापंथी महासभा के निवर्तमान अध्यक्ष श्री सुरेंद्रकुमार चौरड़िया ने पदमुक्त होने के बाद पूज्यवरों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और इस अवधि को व इस दौरान पूज्यवरों के सान्निध्य तथा मार्गदर्शन को अपना अविस्मरणीय अनुभव बताया। माहौल उस समय काफी भावुक और सम्मान से सराबोर हो उठा जब चाड़वास तेरापंथी सभा व विकास मंच की ओर से श्री सुरेंद्र चौरड़िया को अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया। चौरड़ियाजी की कर्तव्य-निष्ठा, कार्यशैली और कल्पनाशीलता को महासभा के लिए महत्त्वपूर्ण बताते हुए जो अवदान इस अवधि में दिए गए, उनका भी स्मरण किया गया।

इस अवसर पर महासभा के उपाध्यक्ष व अन्य पदाधिकारियों को भी उत्तरीय तथा साहित्य भेंट कर सम्मानित किया गया। सर्वश्री तरुण सेठिया, विजयसिंह चौरड़िया व मनोज लूणिया ने भी अपनी भावनाएं प्रकट कीं।

इस मौके पर श्रद्धेय आचार्यवर ने श्री चौरड़ियाजी को 'शासनसेवी' तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती संतोष चौरड़िया को 'श्रद्धा की प्रतिमूर्ति' के संबोधन से अलंकृत करने की घोषणा की। आचार्यवर ने महासभा के कामकाज को सबके लिए अनुमोदनीय मानते हुए कहा कि सुरेंद्र चौरड़िया व उनकी टीम ने महासभा का कायाकल्प कर उसे नया रूप दिया है। वे महासभा के अध्यक्षीय दायित्व से निवृत्त हुए हैं, किंतु संघ-सेवा के अनेक दूसरे कामों से जुड़े रहना है।

इस अवसर पर महासभा के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री राजकरण सिरोहिया ने अपने विचार प्रकट किए तथा नई कार्यकारिणी (देखें इसी अंक में, पृ. 46 पर एक अलग रिपोर्ट) के सदस्यों व नामों की घोषणा की।

इसी अवसर पर प्रेक्षा पुरस्कार-2006 की घोषणा भी की गई। 'मोहनलाल कठोतिया सेवा कोष' की ओर से श्री बजरंग जैन ने घोषणा की कि मुंबई निवासी श्री मिश्रीमल चौधरी को लुधियाना में यह पुरस्कार अक्षय तृतीया के रोज प्रदान किया जाएगा। श्री जेसराज सेखानी ने एक सीडी भेंट की। श्री अशोक संचेती ने 'आगम मंथन प्रतियोगिता' के बारे में तथा श्री भीखमचंद नखत ने 'अहिंसा प्रशिक्षण केंद्रों' के बारे में जानकारी दी। श्री सिद्धराज भंडारी व अशोक चौरड़िया ने आगम मंथन प्रतियोगिता प्रश्न पुस्तिका भेंट की। कार्यक्रम का संचालन मुनि मोहजीतकुमारजी ने किया।

इस मुख्य कार्यक्रम में साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी

ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि साधु-साध्वियों और श्रावक समाज के लिए मर्यादा महोत्सव आचार, मर्यादा व अनुशासन के प्रशिक्षण का अनुपम अवसर है, जिसका लाभ हरएक को उठाना चाहिए।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपने मंगल उद्‌बोधन में धुरी नगर को धर्मपुरी की संज्ञा देते हुए यह कामना प्रकट की कि यह महोत्सव अनुशासन, संयम और मर्यादा के प्रति जागरूकता व निष्ठा की प्रेरणा का उत्सव बने। उन्होंने कहा कि अनुशासनहीनता इस युग की बड़ी समस्या है। आज संगठन बनते हैं, संविधान भी बनते हैं, पर उनके प्रति आस्था नहीं होती और वे कागजी संविधान बनकर रह जाते हैं। आचार्य भिक्षु विशिष्ट क्षमताओं के धनी व्यक्तित्व थे। जो मर्यादाएं उन्होंने प्रतिपादित कीं, उनको प्रज्ञापुरुष जयाचार्यश्री ने महोत्सव का रूप प्रदान किया और इन मर्यादाओं के प्रति, संयम के प्रति सबमें निष्ठा पैदा हुई।

मर्यादा महोत्सव पर अपने मंगल उद्‌बोधन में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने सबसे पहले श्रमण भगवान महावीर का पावन स्मरण किया। आचार्यवर ने बताया कि भगवान महावीर ने समता के संदेश की स्थापना की तथा सचाई को देखने के लिए अनेकांत के रूप में तीसरा नेत्र प्रदान किया। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने आचार्य भिक्षु को भी स्मरण किया और कहा कि उन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ के रूप में न केवल आध्यात्मिक संगठन प्रदान किया, उसे अनुशासन का सुदृढ़ आधार भी दिया। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने श्रद्धेय जयाचार्यश्री और आचार्यश्री तुलसी का पावन स्मरण भी किया, जिन्होंने चिंतन की वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की, अनुशासन को युग के सांचे में ढालने का अभिक्रम किया। उन्होंने माना कि इसीलिए तेरापंथ आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

आचार्यवर ने कहा कि संगठन को हानि पहुंचाने वाले दो ही तत्त्व होते हैं—अहंकार और ममकार। ठीक इसके विपरीत जहां पर परस्परता होती है, वहां संगठन अच्छा चलता है। वही संगठन अच्छा लगता है जहां प्रमोद भावना और गुणानुराग होता है। उन्होंने संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए इच्छा का विसर्जन, सामुदायिक चेतना का विकास, व्यवस्था कौशल और समय का विसर्जन करना आवश्यक बतलाया। उन्होंने कहा कि किसी भी बात को अंतःकरण तक पहुंचाने के लिए प्रशिक्षण जरूरी होता है। आचार्यश्री भिक्षु, जयाचार्यश्री और आचार्यश्री तुलसी ने प्रशिक्षण के अनेक सूत्र दिए। आज अपेक्षा है कि मर्यादा और अनुशासन के आधारभूत सूत्रों का अध्ययन हो और उनका निरंतर प्रशिक्षण चले।

मर्यादा महोत्सव के इस पावन अवसर पर आचार्यप्रवर के नवरचित गीत का सस्वर संगान हुआ। समूचा माहौल तब श्रद्धासिक्त हो उठा। इसी के साथ धुरी नगर में तीन दिन का 142वां मर्यादा महोत्सव संपन्न हो गया।

❖

अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त
जानकारियों के आधार पर आलेखन
—भवानी सोलंकी

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन *भारती* एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन *भारती* पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009.
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

With best compliments from :

Whenever You Drink

C.T.C., ORTHODOX & GREEN TEA

Think of us

Kokrajhar Tea Estate
Chikonmati Tea Estate
Daloabari Tea Estate
Banglabari Tea Estate

BIJNI DOOARS TEA COMPANY LIMITED
EASTERN DOOARS TEA COMPANY LIMITED

SHANTINIKETAN, 4th Floor
8, Camac Street, KOLKATA 700017

Consultants, Financiers & Agents :

M/s Panchiram Nahata
177, Mahatma Gandhi Road, Kolkata 700007

जैन भारती, अप्रैल, 2006 ■ RNI R No. : 2643/57 ■ डाक पं. सं. : आर जे/डब्ल्यू आर / 11/48/00/06-08
प्रेषण दिनांक 28 मार्च • Licensed to Post without Pre-Payment Under Licence No. RJ/WR/PP/Bikaner13/2004

With best compliments from :

KALYANI TEA CO. LTD.

MAKERS OF FINEST QUALITY OF
GREEN / DRTHODOX / CTC
TEAS

Head Office :
16, Bonfield Lane, KOLKATA 700001
Phone & Fax : (033) 2242-6141

Garden :
Kenduguri Tea Estate
P.O. Rajgarh, Dist. Dibrugarh, Assam
Phone : (03754) 276646 Fax : (03754) 276627

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए
जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।